FEBRUARY 2026 ISSN : 2583-7869

THE PAHADI AGRICULTURE E- Magazine

Volume: 04
Issue: 02

WWW.PAHADIAGROMAGAZINE.IN

Table of Contents

कृषि स्थिरता के लिए प्राकृतिक खेती 1

परितोष कुमार, शैलजा पुनेठा[1] और विनीत कस्वां[*2]*

1 जी.बी. पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखंड

2 कॉलेज ऑफ बेसिक साइंस एंड ह्यूमैनिटीज, सरदारकृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय, बनासकांठा, गुजरात

पर्वतीय क्षेत्रों में स्ट्रॉबेरी की वैज्ञानिक खेती एवं उत्पादन तकनीक 5

शुभम कंडवाल, संजय सिंह नेगी, डाण मंजू एवं अजय हेमदान

वीर चंद्र सिंह गढ़वाली उत्तराखंड औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, भरसार, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड

Diversity of Amaranth (*Amaranthus* spp.): Species Characteristics and Agricultural Uses 9

Akhilesh Raturi1, Sakshi Verma2 and Himanshu Mehta3

1 2Research Scholar, 3Assistant Professor, School of Agriculture and Technology, Maya Devi University, Dehradun, Uttarakhand

हिमाचल प्रदेश में सजावटी स्नेक प्लांट का एन्थ्रेक्नोज रोग 12

अरुणेश कुमार, मीनू गुप्ता, *सतीश कुमार शर्मा* एवं नीलम कुमारी

पादप *रोग विज्ञान विभाग, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश*

Modern Apple Orchard Management in Himachal Pradesh 16

Shailja Sharma

Department of Genetics and Plant Breeding, CSKHPKV Palampur

भारतीय वनस्पति संपदा में करी पत्ते का बहुआयामी महत्व 18

आकृति[1], जसदीप कौर[1], निखिल ठाकुर[2] और निवेश ठाकुर[3]

[1]सब्जी विज्ञान एवं पुष्पकृषि विभाग, चौधरी सरवण कुमार हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर, कांगड़ा (हि. प्र.)

[2]सब्जी विज्ञान विभाग, डॉ यशवन्त सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौणी, सोलन (हि. प्र.)

[3]कृषि विशेषज्ञ, जापान इंटरनेशनल कोऑपरेशन एजेंसी (*JICA*), (हि. प्र.)

आलू में रोग व कीट प्रबन्धन 22

डॉ0 मनोज कुमार सिंह एवं डॉ0 हेमलता पंत

असिस्टेंट प्रोफेसरए उद्यान विज्ञान विभाग एवं जन्तु विज्ञान विभाग

कुलभास्कर आश्रम पी0जी0 कॉलेज एवं सी0एम0पी0 पी0जी0 कॉलेज प्रयागराज

सी-बकथॉर्न: पारंपरिक चिकित्सा से आधुनिक जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा सुधार 26

सृजना बिष्ट[1], शैलजा पुनेठा[1] और विनीत कस्वाँ[2*]*

1 जी.बी. पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखंड

2 कॉलेज ऑफ बेसिक साइंस एंड ह्यूमैनिटीज, सरदारकृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय, बनासकांठा, गुजरात

Success Sotry: From Marginal Farmer to Dairy Entrepreneur- A Model from District Sirmour 30

Harshita Sood, Shiwali Dhiman and Pankaj Mittal*

Krishi Vigyan Kendra Sirmour at Dhaulakuan, CSK Himachal Pradesh Krishi Vishvavidyala, Palampur

कीवी की सफल बागवानी 33

रवि *केमवाल*

बागी मथ्थान गाँव, चंबा, जिला- टिहरी गढ़वाल

www.pahadiagromagazine.in

The Pahadi Agriculture e-Magazine ISSN: 2583-7869

Volume-4, Issue-02 **Article ID: 10423**

कृषि स्थिरता के लिए प्राकृतिक खेती

परितोष कुमार, शैलजा पुनेठा[1*] और विनीत कस्वां[*2]

1 जी.बी. पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखंड

2 कॉलेज ऑफ बेसिक साइंस एंड ह्यूमैनिटीज, सरदारकृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय, बनासकांठा, गुजरात

भारत की कृषि *आज एक ऐसे संक्रमण काल से गुजर रही है, जहाँ उत्पादन बढ़ाने की पारंपरिक और रासायनिक आधारित पद्धतियाँ अब किसानों के लिए दीर्घकालिक रूप से लाभकारी सिद्ध नहीं हो रही हैं। हरित क्रांति के पश्चात देश में खाद्यान्न उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई, परंतु इसके साथ ही रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और एकल फसली प्रणाली (मोनोक्रॉपिंग) पर अत्यधिक निर्भरता ने कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को कमजोर कर दिया। इसके परिणामस्वरूप मिट्टी की उर्वरता में गिरावट, भूजल प्रदूषण, जैव विविधता की हानि तथा उत्पादन लागत में निरंतर वृद्धि जैसी गंभीर समस्याएँ सामने आईं।*

वर्तमान में भारत के लगभग 30–35 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में मृदा क्षरण हो चुका है और कई राज्यों में मिट्टी की जैविक कार्बन मात्रा 0.5 प्रतिशत से भी कम रह गई है, जबकि स्वस्थ एवं उत्पादक मिट्टी के लिए यह स्तर कम से कम 1–1.5 प्रतिशत होना आवश्यक है। बढ़ती लागत के कारण किसान कर्ज़ पर निर्भर होता जा रहा है, जिससे उसकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति और अधिक असुरक्षित होती जा रही है। इन चुनौतियों के बीच प्राकृतिक खेती एक ऐसी वैकल्पिक कृषि प्रणाली के रूप में उभरकर सामने आई है, जो पारिस्थितिक संतुलन, कम लागत और किसानों की आजीविका सुरक्षा—तीनों को एक साथ संबोधित करती है।

प्राकृतिक खेती: एक समग्र सोच

प्राकृतिक खेती केवल कुछ तकनीकों का समूह नहीं है, बल्कि यह प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित कर खेती करने की एक समग्र सोच और दर्शन है। इसका मूल सिद्धांत यह मानता है कि जब मिट्टी, सूक्ष्मजीव, पौधे, पशु और किसान के बीच संतुलन बना रहता है, तब कृषि प्रणाली स्वयं टिकाऊ, उत्पादक और लाभकारी बन जाती है। इस पद्धति में बाहरी रासायनिक इनपुट्स पर निर्भरता को न्यूनतम किया जाता है और स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों—जैसे गोबर, गोमूत्र, फसल अवशेष, पत्तियाँ और जैविक अपशिष्ट—का प्रभावी उपयोग किया जाता है।

इस विचारधारा को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जापान के किसान-दार्शनिक मसानोबू फुकुओका ने लोकप्रिय बनाया, जिन्होंने "कुछ न करने वाली खेती" की अवधारणा प्रस्तुत की। भारत में इसका व्यावहारिक और क्षेत्रीय रूप शून्य बजट प्राकृतिक खेती (ZBNF) के रूप में विकसित हुआ है। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड जैसे राज्यों में लाखों किसान इस प्रणाली को अपना चुके हैं। किए गए अध्ययनों के अनुसार, प्राकृतिक खेती अपनाने वाले किसानों की खेती की लागत 50–70 प्रतिशत तक कम हुई है,

जबकि उनकी शुद्ध आय में उल्लेखनीय सुधार देखा गया है।

प्राकृतिक खेती के प्रमुख सिद्धांत

1. मिट्टी को जीवित पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में देखना

प्राकृतिक खेती का आधार स्वस्थ, जीवंत और सक्रिय मिट्टी है। मिट्टी को केवल फसल उगाने का माध्यम न मानकर एक जीवित पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में देखा जाता है, जिसमें बैक्टीरिया, कवक, केंचुए और एक्टिनोमाइसेट्स जैसे करोड़ों सूक्ष्म जीव निवास करते हैं। ये सूक्ष्म जीव कार्बनिक पदार्थों का अपघटन, पोषक तत्वों का चक्रण तथा मिट्टी जनित रोगों का दमन करते हैं। रासायनिक खेती में ये सूक्ष्म जीव नष्ट हो जाते हैं, जबकि प्राकृतिक खेती इन्हें पुनर्जीवित करती है।

2. रासायनिक इनपुट का त्याग

सिंथेटिक उर्वरक और कीटनाशक अल्पकाल में उपज बढ़ाते हैं, परंतु दीर्घकाल में मिट्टी की संरचना और जैविक संतुलन को नष्ट कर देते हैं। प्राकृतिक खेती में इनके स्थान पर जीवामृत, घनजीवामृत, जैविक खाद और किण्वित पौध अर्क का उपयोग किया जाता है, जिससे मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता बनी रहती है।

जीवामृत, घनजीवामृत, जैविक खाद एवं किण्वित पौध अर्क: बनाने एवं उपयोग की विधि

	बनाने की विधि:	उपयोग
जीवामृत	200 लीटर पानी में 10–15 किग्रा देशी गाय का गोबर, 5–10 लीटर गोमूत्र, 2 किग्रा गुड़, 2 किग्रा बेसन/दाल का आटा और खेत की मेड़ की मुट्ठीभर मिट्टी मिलाएँ। छाया में 48–72 घंटे लकड़ी की छड़ी से दिन में 2 बार घुमाते रहें।	सिंचाई के पानी के साथ 200 लीटर/एकड़ या 10% घोल का पत्तियों पर छिड़काव 15–20 दिन के अंतराल पर करें।
घनजीवामृत	गोबर 100 किग्रा, गोमूत्र 5–10 लीटर, गुड़ 2 किग्रा, बेसन 2 किग्रा और मेड़ की मिट्टी मिलाकर गाढ़ा मिश्रण बनाएं, छाया में सुखाकर गोलियाँ/चूर्ण बना लें।	बुवाई/रोपाई से पहले 100–200 किग्रा/एकड़ मिट्टी में मिलाएँ।
जैविक खाद (कम्पोस्ट)	फसल अवशेष, गोबर, पत्तियाँ और रसोई कचरा परत-दर-परत ढेर में रखें; नमी बनाए रखें। 2–3 माह में खाद तैयार।	2000–3000 किग्रा/एकड़ खेत में मिलाएँ।
किण्वित पौध अर्क (नीम/लहसुन/मिर्च)	5 किग्रा पौध सामग्री को कूटकर 10 लीटर पानी में 5–7 दिन किण्वित करें, छान लें।	3–5% घोल का छिड़काव कीट प्रबंधन हेतु करें।

3. फसल विविधता और मिश्रित खेती

एकल फसल प्रणाली से कीट-रोगों का प्रकोप बढ़ता है और जलवायु जोखिम भी अधिक होता है। प्राकृतिक खेती में मिश्रित फसल, फसल चक्र, दलहनी फसलें और एग्रोफॉरेस्ट्री को बढ़ावा दिया जाता है, जिससे मिट्टी में नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ती है और किसान की आय के विविध स्रोत विकसित होते हैं।

4. मल्चिंग और मिट्टी का आवरण

मिट्टी को ढककर रखना प्राकृतिक खेती का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। भूसा, पत्तियाँ या हरी फसल से मल्चिंग करने पर मिट्टी की नमी 25–30 प्रतिशत तक बनी रहती है, खरपतवारों का नियंत्रण होता है और सिंचाई की आवश्यकता कम हो जाती है।

5. न्यूनतम जुताई

अत्यधिक जुताई से मिट्टी की संरचना टूटती है और ईंधन की खपत बढ़ती है। प्राकृतिक खेती में कम या शून्य जुताई अपनाई जाती है, जिससे मिट्टी का कटाव रुकता है और सूक्ष्मजीव सुरक्षित रहते हैं।

प्राकृतिक खेती की प्रमुख प्रथाएँ

1. प्राकृतिक मिट्टी प्रतिरोपक (जीवामृत)

गाय के गोबर, गोमूत्र, गुड़, बेसन और स्थानीय मिट्टी से तैयार जीवामृत मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या को कई गुना बढ़ा देता है। शोधों के अनुसार, जीवामृत के नियमित प्रयोग से मृदा जैविक कार्बन 0.2–0.4 प्रतिशत तक बढ़ सकता है।

2. वनस्पति आधारित कीट प्रबंधन

नीम, लहसुन, मिर्च और अदरक से बने जैविक अर्क कीटों को नियंत्रित करते हैं और मित्र कीटों को नुकसान नहीं पहुँचाते, जिससे कीटनाशकों पर होने वाला खर्च लगभग समाप्त हो जाता है।

3. मल्चिंग तकनीकें

प्राकृतिक खेती में मिट्टी की मल्च, भूसे की मल्च और जीवित मल्च (कवर फसलें) का उपयोग किया जाता है, जो मिट्टी संरक्षण में सहायक हैं।

प्राकृतिक खेती और मृदा स्वास्थ्य

मृदा क्षरण आज वैश्विक खाद्य सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा बन चुका है। भारत में हर वर्ष लगभग 5.3 अरब टन उपजाऊ मिट्टी कटाव से नष्ट हो जाती है। प्राकृतिक खेती मिट्टी की संरचना सुधारती है, जल धारण क्षमता 20–40 प्रतिशत तक बढ़ाती है और फसलों को सूखा तथा अत्यधिक वर्षा दोनों परिस्थितियों में सहनशील बनाती है।

पर्यावरणीय लाभ

प्राकृतिक खेती से जल, मिट्टी और वायु प्रदूषण में कमी आती है। यह कार्बन पृथक्करण को बढ़ाकर जलवायु परिवर्तन से निपटने में सहायक है। FAO के अनुसार, कृषि क्षेत्र से होने वाले 20–25 प्रतिशत ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन रासायनिक उर्वरकों से जुड़े हैं। इसके अतिरिक्त, प्राकृतिक खेती जैव विविधता संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

आर्थिक स्थिरता और किसान की आजीविका

प्राकृतिक खेती स्थानीय संसाधनों पर आधारित होने के कारण खेती की लागत में भारी कमी लाती है। कम लागत और विविध फसल प्रणाली से कर्ज़ का जोखिम घटता है। 2–3 वर्षों के संक्रमण काल के बाद उपज स्थिर हो जाती है और रसायन-मुक्त उत्पादों को बाजार में 20–30 प्रतिशत अधिक मूल्य प्राप्त होता है।

चुनौतियाँ और सीमाएँ

प्राकृतिक खेती की प्रमुख चुनौतियों में शुरुआती संक्रमण अवधि, प्रशिक्षण की कमी और कुछ प्रथाओं में

अधिक श्रम की आवश्यकता शामिल हैं। इनका समाधान चरणबद्ध परिवर्तन, किसान-से-किसान सीख और संस्थागत समर्थन से संभव है।

भविष्य की संभावनाएँ

जलवायु परिवर्तन और घटते प्राकृतिक संसाधनों के वर्तमान परिदृश्य में प्राकृतिक खेती कोई विकल्प नहीं, बल्कि अनिवार्यता बनती जा रही है। उचित नीतिगत समर्थन, प्रशिक्षण और बाजार व्यवस्था के माध्यम से यह खेती किसानों को आत्मनिर्भर बनाने, पर्यावरण संरक्षण और आने वाली पीढ़ियों के लिए टिकाऊ कृषि सुनिश्चित करने की क्षमता रखती है।

निष्कर्ष

प्राकृतिक खेती खेती को पुनः लाभ का सौदा बना सकती है—कम लागत, सुरक्षित उत्पादन और स्वस्थ पर्यावरण के साथ। यह किसानों के पारंपरिक ज्ञान और प्रकृति की शक्ति को जोड़ने वाली एक सशक्त कृषि प्रणाली है, जो कृषि स्थिरता की दिशा में एक ठोस और दूरगामी कदम सिद्ध हो सकती है।

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-4, Issue-02
Article ID: 10424

पर्वतीय क्षेत्रों में स्ट्रॉबेरी की वैज्ञानिक खेती एवं उत्पादन तकनीक

शुभम कंडवाल, संजय सिंह नेगी, डाण मंजू एवं अजय हेमदान
वीर चंद्र सिंह गढ़वाली उत्तराखंड औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, भरसार, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड

स्ट्रॉबेरी *एक उच्च मूल्य वाला शीतोष्ण फल है, जो अपने उत्कृष्ट पोषण गुणों, आकर्षक लाल रंग, मधुर स्वाद एवं निरंतर बढ़ती बाजार मांग के कारण पर्वतीय क्षेत्रों के किसानों के लिए एक अत्यंत लाभकारी एवं संभावनाशील फसल के रूप में उभर रहा है। यह एक मानव–निर्मित संकर फल है, जिसकी व्यावसायिक खेती भारत के पर्वतीय क्षेत्रों के साथ–साथ कुछ अनुकूल मैदानी क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक की जा रही है। पर्वतीय क्षेत्रों के किसान यदि वैज्ञानिक उत्पादन तकनीकों, उन्नत प्रबंधन पद्धतियों एवं मूल्यवर्धन पर विशेष ध्यान दें, तो स्ट्रॉबेरी की खेती को अपनी आय का एक स्थायी, सुरक्षित और लाभकारी विकल्प बना सकते हैं।*

परिचय

स्ट्रॉबेरी, जिसका वानस्पतिक नाम (*फ्रैगेरिया × अनानासा*) है, रोजेसी कुल का एक महत्त्वपूर्ण शीतोष्ण फल है। यह एक मानव–निर्मित संकर फल है, जिसका विकास वर्ष 1765 में फ्रांसीसी वनस्पतिशास्त्री एंटोइन–निकोलस डुशेन द्वारा (*फ्रैगारिया चिलोएन्सिस × फ्रैगारिया वर्जिनियाना*) के सफल संकरण से किया गया। इस संकर को (*फ्रैगेरिया × अनानासा*) नाम दिया गया, जिसका नामकरण संभवतः इसके विशिष्ट स्वाद के कारण नई दुनिया के एक अन्य फल 'अनानास' से प्रेरित होकर रखा गया।

वर्तमान समय में इसकी खेती यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस सहित विश्व के अनेक शीतोष्ण एवं पर्वतीय क्षेत्रों व्यापक रूप से की जाती है। भारत में स्ट्रॉबेरी का व्यावसायिक उत्पादन मुख्यतः पर्वतीय क्षेत्रों जैसे नैनीताल, देहरादून, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, नीलगिरी और दार्जलिंग में किया जाता है। अनुकूल किस्मों एवं उन्नत तकनीकों के परिणामस्वरूप अब इसकी खेती मैदानी क्षेत्रों–दिल्ली, बंगलौर, जालंधर, मेरठ, पंजाब, हरियाणा आदि में भी सफलतापूर्वक की जा रही है। वर्तमान में सोलन, हल्दवानी, देहरादून, रतलाम, नासिक और गुड़गांव प्रमुख स्ट्रॉबेरी उत्पादन केंद्रों के रूप में उभर रहे हैं।

पोषण मूल्य

स्ट्रॉबेरी एक अत्यंत पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्धक फल है। इसके 100 ग्राम ताजे फल में लगभग 87.8 प्रतिशत पानी होने के कारण यह शरीर को ताजगी प्रदान करता है, जबकि इसमें उपस्थित 9.8 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट त्वरित ऊर्जा का अच्छा स्रोत हैं। फल में मौजूद प्रोटीन, रेशा एवं खनिज लवण पाचन तंत्र को सुदृढ़ बनाए रखने में सहायक

होते हैं। कैल्शियम एवं फास्फोरस हड्डियों और दाँतों के विकास में योगदान देते हैं, जबकि लौह तत्व रक्त निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त, उच्च मात्रा में पाया जाने वाला विटामिन–सी न केवल प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करता है, बल्कि लौह तत्व के अवशोषण को भी बढ़ाता है। इन सभी पोषक तत्वों की संयुक्त उपस्थिति के कारण स्ट्रॉबेरी को विशेष रूप से एनीमिया से पीड़ित व्यक्तियों, बच्चों एवं वृद्धों के लिए अत्यंत लाभकारी फल माना जाता है।

उन्नत किस्में

पर्वतीय क्षेत्रों में उगाई जाने वाली स्ट्रॉबेरी की अधिकांश किस्में विदेश से आयातित की गई हैं, जबकि कुछ किस्में संकरण विधि द्वारा स्थानीय जलवायु परिस्थितियों के अनुरूप विकसित की गई हैं। फल पकने की अवधि के आधार पर इन किस्मों को अगेती एवं पिछेती वर्गों में विभाजित किया जाता है।

अगेती किस्में– डगलस, गोरिल्ला, फर्न, अर्लिग्लो, तिओगा एवं कैमारोसा।

पिछेती किस्में– चांडलर, डाना, सेल्बा एवं स्वीट चार्ली।

जलवायु एवं मृदा

स्ट्रॉबेरी के सफल खेती लिए ठंडी एवं समशीतोष्ण जलवायु सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है। पौधों की वृद्धि हेतु 15–22 डिग्री सेल्सियस तापमान आवश्यक होता है, जबकि पुष्पन और फलन के समय हल्की ठंड फल की गुणवत्ता एवं रंग विकास में सहायक होती है। अच्छी जल निकास वाली, जैविक पदार्थों से भरपूर दोमट या बलुई दोमट मृदा सर्वोत्तम रहती है। मृदा का पी–एच मान 5.5 से 6.5 अच्छा माना गया है।

प्रवर्धन

स्ट्रॉबेरी का व्यावसायिक प्रवर्धन मुख्यतः रनर द्वारा किया जाता है। फलन की पश्चात जूनदृजुलाई माह में एक स्वस्थ पौधे से पर्याप्त संख्या में रनर प्राप्त होते हैं, जिनसे 15–20 नए पौधे विकसित हो सकते हैं। इनमें से प्रारंभिक 3–4 पौधे अधिक सशक्त एवं उत्पादक पाए जाते हैं, अतः इन्हीं पौधों को चयन कर मुख्य खेत में रोपण हेतु उपयोग किया जाता है। मुख्य खेत में अनावश्यक रनरों को समय–समय पर हटाने से पौधों की ऊर्जा फल विकास की ओर केंद्रित रहती है, जिससे उपज एवं फल गुणवत्ता में सुधार होता है। इसके अतिरिक्त, टिशू कल्चर तकनीक द्वारा रोगमुक्त एवं एकरूप पौध सामग्री का उत्पादन भी सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

भूमि की तैयारी

स्ट्रॉबेरी की रोपण से पूर्व खेत की गहरी जुताई कर भूमि को भुरभुरी एवं समतल किया जाता है। इसके पश्चात उचित जल निकास हेतु (करहा) या फावड़े की सहायता से लगभग 1 मीटर चौड़ी तथा 20–25 सेंमी. ऊँची उठी हुई क्यारियाँ तैयार की जाती हैं। क्यारियों की लंबाई सुविधा एवं खेत की ढाल के अनुसार निर्धारित की जाती है। चूँकि स्ट्रॉबेरी का फल अत्यंत नाजुक एवं शीघ्र खराब होने वाला होता है, इसलिए अच्छी जल निकास व्यवस्था एवं समुचित क्यारी निर्माण अत्यावश्यक है।

पौध रोपण का समय व विधि

स्ट्राबेरी का रोपण अक्टूबर से नवम्बर तक किया जाता है। एक एकड़ क्षेत्र में रोपण हेतु लगभग 44–45 हजार रनर की आवश्यकता पड़ती है, जबकि एक नाली में लगभग 1500–2000 रनर पौधे लगाए जाते हैं। रोपण से पूर्व रनर की जड़ों को 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम (बाविस्टीन) के घोल में 5–10 मिनट तक उपचारित किया जाता है, जिससे जड़ों पर उपस्थित अथवा मिट्टी से फैलने वाले फफूंदजनित रोगों जैसे जड़ सड़न, क्राउन रॉट एवं डैम्पिंग–ऑफ की संभावना कम हो जाती है। इस उपचार से पौधों की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है तथा रोपण के बाद पौधों की मृत्यु दर में कमी आती है, जिससे खेत में स्वस्थ एवं एकसमान फसल प्राप्त होती है। तैयार क्यारियों में 25–30 सेमी की दूरी पर स्वस्थ एवं समान आकार के रनर का रोपण किया जाता है। रोपण के पश्चात स्प्रिंकलर द्वारा सिंचाई कर मिट्टी को भली–भांति संतृप्त किया जाता है।

खाद एवं सिंचाई

पर्वतीय क्षेत्रों में स्ट्रॉबेरी की खेती प्रायः सीढ़ीदार खेतों में की जाती है, जहाँ माप की प्रमुख इकाई नाली (लगभग 200 वर्ग मीटर) होती है। इसी आधार पर प्रति नाली खाद, पौध संख्या एवं उत्पादन निर्धारित किया जाता है। एक नाली क्षेत्र में सामान्यतः 1 किग्रा नाइट्रोजन, 500 ग्राम फास्फोरस, 700 ग्राम पोटाश तथा लगभग 400 किग्रा गोबर की खाद दी जाती है। फसल की सिंचाई भूमि के प्रकार एवं मौसम की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। सामान्यतः अक्टूबर–नवम्बर में ड्रिप सिंचाई प्रणाली द्वारा प्रतिदिन लगभग 40 मिनट (20 मिनट प्रातः एवं 20 मिनट सायं) सिंचाई उपयुक्त रहती है। आवश्यकता पड़ने पर प्रवाह विधि, स्प्रिंकलर अथवा नाली द्वारा भी सिंचाई की जा सकती है।

खरपतवार नियंत्रण एवं फसल प्रबंध (मलचिंग)

स्ट्रॉबेरी का पौधा एवं फल अत्यंत नाजुक होते हैं, इसलिए इसकी खेती में विशेष प्रबंधन की आवश्यकता होती है। मल्चिंग से पूर्व फसल में 25 दिन के अंतराल पर निराईदृगुड़ाई की जाती है। यदि खेत खरपतवार–मुक्त हो, तो रोपाई के लगभग 30 दिन बाद केवल एक गुड़ाई पर्याप्त रहती है। खेत में नागरमोथा का प्रकोप होने पर, फसल लगाने से पूर्व खेत की तैयारी के समय प्रभावकारी खरपतवारनाशी जैसे ग्लाइफोसेट–3 लीटर प्रति एकड़ का प्रयोग कर खरपतवारों का नियंत्रण किया जाना चाहिए। रोपाई के लगभग 50 दिन बाद फसल में मल्चिंग की जाती है। इसके लिए कम लागत वाली काली पॉलिथीन का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। क्यारी की लंबाई एवं चौड़ाई के अनुसार पॉलिथीन की पट्टियाँ बनाकर उनमें उपयुक्त दूरी पर छेद किए जाते हैं, जिनसे पौधों को बाहर निकालते हुए

पॉलिथीन को अच्छी तरह बिछाया जाता है। काली पॉलिथीन मल्चिंग से खरपतवार नियंत्रण, नमी संरक्षण एवं शीतकाल में मिट्टी के तापमान को बनाए रखती है, जिससे पौधों की वृद्धि एवं फल गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार होता है। पॉलिथीन के विकल्प के रूप में धान के पुआल का भी सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है।

स्ट्रॉबेरी की पैदावार से लाभ

स्ट्रॉबेरी की अलग – अलग किस्मों से भिन्न – भिन्न पैदावार प्राप्त होती है। सामान्यतः वैज्ञानिक विधियों से की गई खेती में एक पौधे से लगभग 800–900 ग्राम फल प्राप्त किए जा सकते हैं। उन्नत उत्पादन तकनीकों को अपनाकर तथा बाजार की मांग को ध्यान में रखते हुए एक नाली (लगभग 200 वर्ग मीटर) क्षेत्र से 200–400 किलोग्राम तक उत्पादन सफलतापूर्वक लिया जा सकता है। इस प्रकार, एक एकड़ क्षेत्र से औसतन 80–100 क्विंटल तक स्ट्रॉबेरी का उत्पादन संभव है। स्ट्रॉबेरी का बाजार मूल्य सामान्यतः 300 से 600 रुपये प्रति किलोग्राम तक रहता है, जिससे यह पर्वतीय क्षेत्र के किसानों के लिए एक अत्यधिक लाभकारी फसल सिद्ध हो सकती है।

उत्पादों की विविधता

स्ट्रॉबेरी से जैम, जेली, जूस, आइसक्रीम और अन्य उत्पाद बनाए जा सकते हैं, जो किसानों और व्यापारियों के लिए अतिरिक्त आय का स्रोत बनते हैं। जिससे किसान भाई इसकी एक बार की फसल से अधिक मात्रा में लाभ कमा सकते है।

निष्कर्ष

पर्वतीय क्षेत्रों में स्ट्रॉबेरी की वैज्ञानिक खेती किसानों के लिए एक आर्थिक रूप से लाभकारी और पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ विकल्प हो सकती है। यदि इस कृषि पद्धति को सही तरीके से अपनाया जाए, तो यह कृषि क्षेत्र में एक नई क्रांति ला सकती है।

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-4, Issue-02
Article ID: 10425

Diversity of Amaranth (*Amaranthus* spp.): Species Characteristics and Agricultural Uses

Akhilesh Raturi[1], Sakshi Verma[2] and Himanshu Mehta[3]
[1 2]Research Scholar, [3]Assistant Professor, School of Agriculture and Technology, Maya Devi University, Dehradun, Uttarakhand

Amaranth (Amaranthus spp.) represents one of the most ancient and diverse plant groups cultivated by humankind. Belonging to the family Amaranthaceae, the genus Amaranthus comprises more than 60 species distributed across tropical, subtropical, and temperate regions worldwide. These species are utilized in multiple forms, including leafy vegetables, grain crops (pseudo-cereals), ornamental plants, and, in some cases, as wild or weedy species. The remarkable genetic diversity of amaranth contributes to its adaptability, resilience to environmental stresses, and suitability for sustainable and low-input agricultural systems. This review highlights the major amaranth species, their distinctive characteristics, and their agricultural and nutritional significance.

Classification of Amaranth Species

Based on their primary use, amaranth species are broadly categorized into three groups: leafy vegetable amaranths, grain amaranths, and ornamental or wild amaranths. Although some overlap exists among these categories, this classification provides a practical framework for understanding their utilization and agronomic importance.

Leafy Vegetable Amaranths

Leafy amaranths are widely cultivated for their tender leaves and young shoots, which are consumed as vegetables. These species are characterized by rapid growth, short maturity duration, and high nutritional value, making them particularly popular in Asia and Africa.

Amaranthus tricolor

Amaranthus tricolor is one of the most widely cultivated leafy amaranth species, especially in India, Southeast Asia, and China. It exhibits extensive variation in leaf color, including green, red, and purple shades. The leaves are rich in iron, calcium, β-carotene, vitamin C, and antioxidant compounds. Due to its fast growth, harvesting can begin within 25–30 days after sowing.

Amaranthus blitum

Commonly known as purple amaranth or wild spinach, A. blitum is cultivated in many tropical regions as a leafy vegetable. It produces soft, palatable leaves with a mild flavor and adapts well to diverse soil types. This species shows moderate tolerance to drought and is suitable for low-input farming systems.

Amaranthus dubius

Amaranthus dubius is extensively grown in South India and parts of Africa. It is valued for its large, tender leaves and high biomass production. The species is well adapted to warm and humid climates and demonstrates tolerance to heat and excess soil moisture.

Amaranthus viridis

Known as slender amaranth, A. viridis is cultivated as a leafy vegetable and also occurs as a semi-wild species. It is widely used in traditional diets due to its high nutritional content and ability to thrive under diverse

environmental conditions, making it suitable for marginal and resource-poor farming areas.

Grain Amaranths

Grain amaranths are cultivated primarily for their seeds, which are used as pseudo-cereals. These species were staple crops of ancient civilizations such as the Aztecs and Incas and have regained importance due to their exceptional nutritional properties.

Amaranthus hypochondriacus

Amaranthus hypochondriacus is one of the most important grain amaranth species cultivated globally. It produces erect plants with compact inflorescences and high grain yield potential. The seeds are rich in high-quality protein, particularly lysine, which is deficient in most cereal grains.

Amaranthus cruentus

Amaranthus cruentus is valued for its yield stability and adaptability to adverse conditions. It performs well under marginal soils and exhibits tolerance to drought and heat stress. The grains are commonly consumed in popped form, as flour, or in various processed food products.

Amaranthus caudatus

Popularly known as "love-lies-bleeding," A. caudatus is characterized by long, drooping inflorescences. It is cultivated for both grain and ornamental purposes, particularly in South America and the Himalayan regions. In addition to its nutritional value, the species holds cultural and aesthetic importance.

Dual-Purpose Amaranths

Several amaranth species are used for both leafy vegetable and grain purposes, offering flexibility and enhanced food security.

Amaranthus hybridus

Amaranthus hybridus is a widely adapted species cultivated for both leaves and seeds. The leaves are consumed as vegetables, while the seeds are used as grain or animal feed. Its adaptability to diverse agro-climatic conditions makes it a valuable species for mixed farming systems.

Amaranthus spinosus

Although often regarded as a wild or weedy species, A. spinosus is traditionally used as a leafy vegetable and medicinal plant in many rural communities. Despite the presence of spines, young leaves are edible and nutritionally rich.

Ornamental and Wild Amaranths

Several amaranth species are cultivated primarily for ornamental purposes due to their striking foliage and inflorescences.

Amaranthus tricolor and A. caudatus are commonly used as ornamental plants because of their vibrant leaf coloration and unique flower structures. In contrast, wild species such as Amaranthus retroflexus and Amaranthus palmeri are often considered weeds in agricultural fields. Despite their weedy nature, these species possess high nutritional value and exceptional stress tolerance and serve as valuable genetic resources for breeding programs aimed at crop improvement.

Agronomic and Nutritional Significance of Species Diversity

The extensive diversity among amaranth species offers significant opportunities for sustainable agriculture and crop improvement. Species vary widely in growth habit, maturity period, stress tolerance, and nutrient composition, allowing selection according to local climatic conditions, soil types, and production objectives.

Leafy amaranths are excellent sources of micronutrients, dietary fiber, and antioxidants, while grain amaranths provide high-quality protein and are naturally gluten-free. Incorporating different amaranth species into farming systems can contribute to enhanced dietary diversity, improved nutrition, and climate-resilient agricultural practices.

Conclusion

The genus Amaranthus encompasses a wide range of species with substantial agricultural, nutritional, and cultural value. Leafy vegetable species such as Amaranthus tricolor, A. blitum, and A. dubius play a crucial role in vegetable production, while grain species like A. hypochondriacus, A. cruentus, and A. caudatus contribute significantly to food and nutritional security. Dual-purpose, ornamental, and wild species further enrich the genetic base of the genus. Effective utilization and conservation of amaranth diversity can support sustainable agriculture, climate resilience, and improved human nutrition in the future.

References

- Achigan-Dako, E.G., et al. (2014). Nutritional value and utilization of leafy vegetables in Africa. Food Security, 6, 1–15.
- FAO. (2013). Amaranth: A Promising Crop for Food and Nutrition Security. Food and Agriculture Organization of the United Nations, Rome.
- Joshi, D.C., et al. (2018). Amaranth: A future crop for food and nutritional security. Journal of Pharmacognosy and Phytochemistry, 7(2), 2278–2283.
- Kumar, S., & Yadav, R. (2018). Grain amaranth: Production potential and nutritional importance. Indian Journal of Agricultural Sciences, 88(11), 1679–1686.
- National Academy of Sciences. (1984). Amaranth: Modern Prospects for an Ancient Crop. National Academies Press, Washington, DC.
- Rastogi, A., & Shukla, S. (2013). Amaranth: A new millennium crop of nutraceutical values. Critical Reviews in Food Science and Nutrition, 53(2), 109–125.
- Sauer, J.D. (1993). Historical Geography of Crop Plants. CRC Press, Boca Raton, USA.
- Venskutonis, P.R., & Kraujalis, P. (2013). Nutritional components of amaranth seeds and vegetables. Food Science and Nutrition, 1(3), 1–10.

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-4, Issue-02
Article ID: 10426

हिमाचल प्रदेश में सजावटी स्नेक प्लांट का एन्थ्रेक्नोज रोग

अरुणेश कुमार, मीनू गुप्ता, सतीश कुमार शर्मा एवं नीलम कुमारी
पादप रोग विज्ञान विभाग, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश

स्नेक प्लांट (Sansevieria trifasciata), *जिसे हिंदी में नागफनी पौधा या साँस की जीभ भी कहा जाता है, एक आकर्षक इनडोर, लोकप्रिय सजावटी एवं औषधीय पौधा है। हिमाचल प्रदेश की भौगोलिक परिस्थितियाँ जैसे मध्यम से ठंडी जलवायु, स्वच्छ वातावरण और बढ़ती शहरीकरण प्रवृत्ति, इस की खेती और उपयोग के लिए अनुकूल हैं। हिमाचल प्रदेश में घरों, होटलों, कार्यालयों, शिक्षण संस्थानों और पर्यटक स्थलों की सजावट के लिए इसका व्यापक उपयोग किया जाता है। स्नेक प्लांट वायु से हानिकारक गैसों जैसे कार्बन डाइऑक्साइड, फॉर्मल डिहाइड और बेंजीन को अवशोषित कर वातावरण को शुद्ध करता है। यह विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों और बंद कमरों में अत्यंत उपयोगी है। यह पौधा कम पानी में भी जीवित रहता है जो हिमाचल प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में सीमित जल संसाधनों की स्थिति में लाभदायक है। स्नेक प्लांट की नर्सरी उत्पादन, गमले में बिक्री और सजावटी पौधों के व्यापार से स्थानीय किसानों और उद्यमियों को अतिरिक्त आय के अवसर मिलते हैं। यह स्वरोजगार को भी बढ़ावा देता है। हरित आवरण बढ़ाने, इनडोर ग्रीनरी को प्रोत्साहित करने तथा पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में स्नेक प्लांट की महत्वपूर्ण भूमिका है जो हिमाचल प्रदेश जैसे पर्यावरण-संवेदनशील राज्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। हाल के वर्षों में स्नेक प्लांट में विभिन्न रोगों का प्रकोप देखने को मिला है जिनमें एन्थ्रेक्नोज रोग एक प्रमुख फफूंद जनित रोग के रूप में उभरकर सामने आया है।*

1. **रोग का कारक:** यह रोग कोलेटोट्राइकम ग्लियोस्पोरियोइड्स (*Colletotrichum gloeosporioides*) नामक कवक के कारण होता है।
2. **रोग के लक्षण:** हिमाचल प्रदेश की आर्द्र एवं मध्यम तापमान वाली जलवायु में स्नेक प्लांट पर एन्थ्रेक्नोज रोग के लक्षण प्रायः वर्षा ऋतु एवं अधिक नमी की स्थिति में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं:

3. **पत्तियों पर प्रारंभिक धब्बे:-**
रोग की शुरुआत पत्तियों पर छोटे, गोल या अंडाकार, पानी से भीगे हुए (जल सिक्त) हल्के भूरे रंग के धब्बों के रूप में होती है।
4. **धब्बों का आकार बढ़ना:-** समय के साथ ये धब्बे बड़े होकर गहरे भूरे या काले रंग के हो जाते हैं तथा उनके किनारे अनियमित दिखाई देते हैं।
5. **धब्बों का आपस में मिलना:-** गंभीर अवस्था में छोटे-छोटे धब्बे आपस में मिलकर बड़े मृत ऊतक

(नेक्रोटिक) क्षेत्र बना लेते हैं, जिससे पत्तियाँ कमजोर हो जाती हैं।

6. **पत्तियों का सूखना और झुलसना:-** अधिक संक्रमण की स्थिति में पत्तियों के सिरे और किनारे सूखने लगते हैं तथा पूरी पत्ती झुलसी हुई प्रतीत होती है।
7. **पत्तियों पर काले बिंदु (एसेर्व्युलाई):-** संक्रमित धब्बों पर छोटे-छोटे काले बिंदु दिखाई देते हैं, जो रोगजनक कवक की संरचनाएँ होती हैं और रोग की पहचान में सहायक होते हैं।
8. **सौंदर्य गुणवत्ता में कमी:-** पत्तियों पर धब्बों और सूखे हिस्सों के कारण पौधे की सजावटी सुंदरता कम हो जाती है, जिससे उसका बाजार मूल्य घट जाता है।
9. अधिक नमी में रोग की तीव्रता:- हिमाचल प्रदेश में अधिक वर्षा, खराब जल निकास और घनी रोपाई की स्थिति में रोग तेजी से फैलता है।

रोग के लक्षण

- रोग का जीवन चक्र:_हिमाचल प्रदेश की नम एवं मध्यम तापमान वाली जलवायु इस रोग के जीवन चक्र को पूर्ण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसका जीवन चक्र निम्न चरणों में पूरा होता है:
- रोग जनक का जीवित रहना:- एन्थ्रेक्नोज का कवक संक्रमित पौधों की सूखी पत्तियों, अवशेषों, मिट्टी तथा नर्सरी में बचे हुए पौध भागों में निष्क्रिय अवस्था में जीवित रहता है। यह कवक प्रतिकूल परिस्थितियों में भी लंबे समय तक जीवित रह सकता है।
- बीजाणुओं का निर्माण:- अनुकूल परिस्थितियाँ (अधिक नमी और उपयुक्त तापमान) मिलने पर कवक संक्रमित ऊतकों पर काले रंग की संरचनाएँ

(एसेर्व्युलाई) बनाता है, जिनमें बड़ी संख्या में अलैंगिक बीजाणु (कोनिडिया) उत्पन्न होते हैं।

- बीजाणुओं का प्रसार:- कोनिडिया वर्षा की छींटों, सिंचाई जल, हवा, कीटों तथा संक्रमित औजारों के माध्यम से स्वस्थ पौधों तक पहुँचते हैं। हिमाचल प्रदेश में मानसून के दौरान यह प्रसार तेजी से होता है।

- संक्रमण की प्रक्रिया:- जब बीजाणु पत्तियों की गीली सतह पर गिरते हैं, तो वे अंकुरित होकर अंकुर नली बनाते हैं और पत्तियों के ऊतकों में प्रवेश करते हैं। प्रवेश प्रायः प्राकृतिक छिद्रों या घायल भागों से होता है।
- लक्षणों का विकास:- संक्रमण के कुछ दिनों बाद पत्तियों पर भूरे या काले धब्बे दिखाई देने लगते हैं, जो धीरे-धीरे बढ़कर एन्थ्रेक्नोज के विशिष्ट लक्षण उत्पन्न करते हैं।
- द्वितीयक संक्रमण:- संक्रमित धब्बों पर पुनः एसेर्व्युलाई बनते हैं और नए बीजाणु उत्पन्न होते हैं, जो उसी मौसम में कई बार संक्रमण फैलाते हैं। इससे रोग तेजी से बढ़ता है।
- पुनः जीवित रहने की अवस्था:- मौसम प्रतिकूल होने पर कवक पुनः संक्रमित अवशेषों में निष्क्रिय अवस्था में चला जाता है और अगले अनुकूल मौसम में फिर सक्रिय होकर जीवन चक्र को दोहराता है।

रोग के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ:

- अधिक आर्द्रता:- 80–90% या उससे अधिक आर्द्रता एन्थ्रेक्नोज कवक के बीजाणुओं के अंकुरण और संक्रमण के लिए अत्यंत अनुकूल होती है।
- मध्यम तापमान:- 20–30°C तापमान पर कवक की वृद्धि सबसे अधिक होती है। हिमाचल प्रदेश में वर्षा ऋतु के दौरान यह तापमान सामान्य रूप से पाया जाता है।
- लगातार वर्षा या अधिक सिंचाई:- बार-बार वर्षा, पत्तियों पर पानी का ठहराव तथा अत्यधिक सिंचाई से रोग के फैलने की संभावना बढ़ जाती है।
- खराब जल निकास व्यवस्था:- गमलों या नर्सरी में जल निकास ठीक न होने से मिट्टी में नमी बनी रहती है, जो रोग के लिए अनुकूल वातावरण बनाती है।
- घनी रोपाई एवं वायु संचार की कमी:- पौधों के बीच पर्याप्त दूरी न होने से हवा का संचार कम हो जाता है, जिससे पत्तियाँ देर तक गीली रहती हैं और रोग तेजी से फैलता है।
- छायादार एवं कम रोशनी वाली परिस्थितियाँ:- अधिक छाया और कम धूप वाले स्थानों पर नमी बनी रहती है, जो एन्थ्रेक्नोज रोग के विकास को बढ़ावा देती है।
- संक्रमित पौध सामग्री का उपयोग:- पहले से संक्रमित पौध, पत्तियाँ या मिट्टी का उपयोग करने से रोग नर्सरी और गमलों में आसानी से फैल जाता है।
- खराब स्वच्छता प्रबंधन:- संक्रमित पत्तियों को न हटाना, गंदे औजारों का उपयोग और नर्सरी में साफ-सफाई की कमी भी रोग के प्रसार में सहायक होती है।

रोग का प्रबंधन:

1. **सांस्कृतिक प्रबंधन:-**

- रोगमुक्त एवं स्वस्थ पौध सामग्री का उपयोग करें।
- गमलों एवं नर्सरी में उचित जलनिकास व्यवस्था सुनिश्चित करें।
- पौधों के बीच पर्याप्त दूरी रखें ताकि वायु संचार बना रहे।
- अधिक सिंचाई से बचें; केवल आवश्यकता अनुसार पानी दें।
- छायादार स्थानों में अत्यधिक नमी से बचाव करें।

- वर्षा ऋतु में पत्तियों पर पानी के ठहराव से बचें।

2. **स्वच्छता उपाय:-**
   - संक्रमित पत्तियों एवं पौध भागों को समय-समय पर काटकर नष्ट करें।
   - रोगग्रस्त पौधों को स्वस्थ पौधों से अलग रखें।
   - काटने-छांटने वाले औजारों को उपयोग से पहले एवं बाद में कीटाणु रहित करें।
   - नर्सरी एवं गमलों की नियमित साफ-सफाई बनाए रखें।
   - जैविक प्रबंधन
   - मिट्टी में ट्राइकोडर्मा (*Trichoderma viride* या *T. harzianum*) का प्रयोग करें।
   - ट्राइकोडर्मा को गोबर की खाद या कम्पोस्ट में मिलाकर गमलों में डालें।
   - यह लाभकारी कवक रोगजनक फफूंद की वृद्धि को रोकता है और पौधे की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है।

3. **रासायनिक प्रबंधन:-**
   - रोग की तीव्र अवस्था में निम्नलिखित फफूंदनाशकों का छिड़काव प्रभावी होता है:
   - कार्बेन्डाजिम 0.1% (1 ग्राम/लीटर पानी)
   - मैनकोजेब 0.25% (2.5 ग्राम/लीटर पानी)
   - कॉपरऑक्सीक्लोराइड 0.3% (3 ग्राम/लीटर पानी)
   - 10–15 दिन के अंतराल पर 2–3 छिड़काव करें।
   - छिड़काव वर्षा रहित समय में करें।
   - 5. समन्वित रोग प्रबंधन:-
   - सांस्कृतिक + जैविक + रासायनिक उपायों का संतुलित प्रयोग करें।
   - वर्षा ऋतु से पहले निवारक छिड़काव करें।
   - नर्सरी स्तर पर नियमित निरीक्षण एवं शीघ्र रोग पहचान करें।

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-4, Issue-02
Article ID: 10427

Modern Apple Orchard Management in Himachal Pradesh

Shailja Sharma
Department of Genetics and Plant Breeding, CSKHPKV Palampur

Apples are the lifeblood of Himachal's hill economy. Today, using modern methods and improved varieties, orchards can produce much higher yields and incomes. The most important measures are planting high-density dwarf trees, choosing well-drained sites, harvesting rainwater and following timely pruning and spray schedules. Modern orchards begin bearing fruit in just 3–4 years whereas older plantings used to take 6–7 years. A tree can produce roughly 15–20 kg and in a high-density system you can plant around 150 or more trees per bigha, compared with far fewer in traditional orchards.

Variety & Spacing:

For Himachal's climate, low-chill, semi-dwarf varieties work best. These trees are small and compact, so more can be accommodated on terraced farms. Using the right rootstock encourages earlier fruiting. It's good to maintain about 6–7 meters between trees and windbreaks can be planted in exposed areas.

Soil & Site:

Deep, loamy, well-drained soil is ideal with at least 4 feet of depth. Where water tends to stagnate, construct drains. Keep soil pH around 6.5–7.0; if the soil is too acidic apply lime. Planting grass or organic mulch between rows on hill terraces helps reduce erosion.

Water & Irrigation:

Collecting rainwater is very beneficial. Small tanks or farm ponds can store slope runoff, which is most useful during flowering and fruiting. Drip or sprinkler irrigation conserves water and keeps trees healthy. Drip irrigation is becoming quite popular in Himachal and helps maintain moisture during the hot season.

Nutrition:

It's important to add well-rotted farmyard manure or compost at planting, then apply NPK fertilizer in small, spaced doses. Adjusting nutrition based on a soil test is best. Periodic foliar sprays of micronutrients can be helpful. When trees get good nutrition, they grow strong and are less prone to disease.

Pruning & canopy management:

Train young trees properly, for example using a central leader system. Prune every year, preferably in summer, so sunlight and airflow can penetrate easily. Remove dead, crowded, or crossing branches. Using the right tools and sprayers makes the job easier. Good canopy management increases fruit size and reduces the risk of fungal diseases.

Pest & disease control:

Follow a spray schedule carefully. Avoid mixing fungicides, insecticides, and nutrients all in one spray. Sprays are usually applied at 18–21-day intervals. Excessive or unnecessary spraying can increase resistance. Do not use broad-spectrum insecticides indiscriminately if you want to preserve beneficial insects. Regularly remove fallen diseased fruit and leaves from the orchard. IPM tools such as pheromone traps and biocontrol agents are useful for disease control.

Harvest & post-harvest:

Pick fruits at full maturity, judging by both colour and sweetness. Pack them gently, as bruising reduces both price and shelf life. Storing apples at 0–2°C keeps them fresh for much longer. Joining farmer groups or FPOs helps access markets and cold-chain benefits.

If these modern methods are followed, Himachal's orchards can easily become high-yielding and climate-smart. Many growers have seen up to 70% higher yields after adopting high-density planting and drip irrigation. Some are also growing off-season vegetables beneath the orchard for extra income. A healthy orchard can yield 15–20 kg of fruit per tree, and with proper management an acre can generate lakhs of rupees in income.

www.pahadiagromagazine.in

The Pahadi Agriculture e-Magazine ISSN: 2583-7869

Volume-4, Issue-02 Article ID: 10428

भारतीय वनस्पति संपदा में करी पत्ते का बहुआयामी महत्व

आकृति[1] , जसदीप कौर[1] ,निखिल ठाकुर[2] और निवेश ठाकुर[3]

[1]सब्जी विज्ञान एवं पुष्पकृषि विभाग, चौधरी सरवण कुमार हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर, कांगड़ा (हि. प्र.)

[2]सब्जी विज्ञान विभाग, डॉ यशवन्त सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौणी, सोलन (हि. प्र.)

[3]कृषि विशेषज्ञ, जापान इंटरनेशनल कोऑपरेशन एजेंसी (JICA), (हि. प्र.)

करी पत्ता के पौधे का उपयोग मृदा एवं जल संरक्षण में भी बहुतायत से किया जा सकता है। इसका आकार छोटा होने के कारण इसे जैवीय बाड़े (लाइव फंस) के रूप में किसानों द्वारा उपयोग किया जा सकता है। वानस्पतिक अवरोध के रूप में करी पत्ता को अनन्नास व नीबू मास के साथ प्रयोग करके मृदा अपरदन एवं मृदा क्षरण को रोका जा सकता है। इस प्रकार से यह जनजातीय इलाकों में प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करने तथा आदिवासी किसानों के स्वास्थ्य एवं आजीविका के लिए किसी वरदान से कम नहीं है। करी पत्ता का वैज्ञानिक नामः मुराया कोएनिजी है। इसके अन्य नामः बर्गेरा कोएनिजी, चल्कास कोएनिजी हैं। यह एक प्रकार का उष्णकटिबंधीय तथा उप-उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में पाया जाने वाला रूटेसी वंश का पौधा है, जिसका मूल निवास स्थान भारत है।

परिचय

करी पत्ता (Murraya koenigii) रूटेसी (Rutaceae) कुल का पौधा है, जिसमें लगभग 150 वंश और 1600 प्रजातियाँ शामिल हैं । यह पौधा विशेष रूप से दक्षिण एशिया के क्षेत्रों जैसे भारत, श्रीलंका और बांग्लादेश का देशज माना जाता है । यह पौधा एशिया के नम वन क्षेत्रों जैसे नेपाल, भूटान, लाओस, पाकिस्तान, थाईलैंड में पाया जाता है और पूरे भारत में व्यापक रूप से उगाया जाता है। भारतीय उपमहाद्वीप से बाहर यह बहुत कम देखा जाता है । हर्बल दवाएँ अपने कम दुष्प्रभावों और उच्च प्रभावशीलता के कारण विभिन्न रोगों के इलाज में व्यापक रूप से उपयोग की जाती हैं और अपेक्षाकृत कम लागत पर उपलब्ध होती हैं। यह समीक्षा करी पत्ते के विभिन्न उपयोगों और संभावनाओं को स्पष्ट करती है। करी पत्ता बहुत ही लाभप्रद और औषधीय से परिपूर्ण अर्ध-पर्णपाती सुगंधित झाड़ों है जिसमें, पतले लेकिन मजबूत लकड़ी के तने और गहरे भूरे रंग की छाल से ढकी शाखाएं होती हैं। इसकी पत्तियां गहरी हरी, चमकीली और बहुत ही तीव्र सुगंध वाली होती हैं। करी पत्ता तटवर्ती वनस्पतियों में से एक है. जो कि वन सीमा, अशांत वर्षा वनों, शहरी झाड़ियों, अवरूद्ध क्षेत्रों और बगीचों में बहुतायत से पाया जाता है। यह पेड़ एक बड़ी झाड़ी या छोटे वृक्ष के रूप में आमतौर पर 2.5-4 मीटर लंबा होता है, लेकिन कभी-कभी 6 मीटर तक की ऊंचाई भी प्राप्त कर सकता है। इसका मुख्य तना लगभग काले रंग का और छोटे सफेद बिंदुओं के आवरण में ढका होता है। इसके वैकल्पिक रूप से व्यवस्थित पते (12-20 सें.मी.) लंबे होते हैं और जिसमें 7-31 पत्रक हो सकते हैं। ऐसी मान्यता है कि इन पत्तियों को कुचलने पर एक तीव्र करी जैसी महक आती है। इसी कारण इस पौधे का नाम करी पत्ता रखा गया। करी पत्ता के फूल आकार में छोटे और सफेद रंग के (लगभग 10 12 मि. मी. के

पार) शाखाओं के मुहानों पर बड़े समूहों में (जैसे कि टर्मिनल पैन्कल्स, कोरिअम्ब्स या सिम्स में) व्यवस्थित होते हैं, जिसमें 60-90 तक फूल हो सकते हैं। ये फूल छोटे डंठल (यानी पेडिकेल) पर होते हैं और इनमें । मि. मी. से कम लंबाई के पांच हरे रंग के छोटे फूल होते हैं। उनकी पांच सफेद पंखुड़ियां (5-8 मि.मी. लंबी) आकार में लंबी होती हैं। फूलों में दस पीले पुकेसर (4.6 मि.मी. लंबे) और एक अंडाशय एक छोटी शैली (लगभग 4 मि.मी. लंबी) और गोल (यानी सिर के रूप का) क्षतचिन्ह (स्टिग्मा) होते हैं। आमतौर पर फूल वसंत और शुरूआती गर्मियों के दौरान लगते हैं। फल एक गोल (यानी उप गोलाकार) या अंडे के आकार के (यानी ओवौइड) बेरी जैसे होते हैं, जो परिपक्व होते ही हरे से काले या नीले काले रंग में बदल जाते हैं। ये फल (10-16 मि.मी. लंबे और 10-12 मि.मी. चौड़े) दिखने में चमकदार होते हैं और इनमें एक या दो हरे बीज (11 मि.मी. तक लंबे और 8 मि.मी. चौड़े) होते हैं। फल आमतौर पर गर्मियों के दौरान परिपक्व होते हैं। इसके छोटे-छोटे, चमकीले काले रंग के फल तो खाए जा सकते हैं, लेकिन इनके बीज विषैले होते हैं।

उपयोग

ताजे करी पत्तों का महत्व दक्षिण पूर्व एशिया के व्यंजनों में मसाले के रूप में है। ये सबसे व्यापक रूप से दक्षिण और पश्चिमी तट के भारतीय व्यंजनों को पकाने में उपयोग किए जाते हैं। आमतौर पर तैयारी के पहले चरण में वनस्पति तेल, सरसों और कटे हुए प्याज के साथ करी पत्ते को तला जाता है। उनका उपयोग थोरन, बड़ा, रसम और करी बनाने के लिए भी किया जाता है। कम्बोडिया में इसकी पत्तियों को भूना जाता है और सूप में एक घटक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। जावा में पत्तों को अक्सर स्वाद गुलई में सुखाया जाता है। करी पत्तों का तेल निकाला जा सकता है और सुगंधित साबुन बनाने के लिए उपयोग में लिया जा सकता है।

करी की लोकप्रियता

करी पत्तों का बड़े पैमाने पर दक्षिण भारत और श्रीलंका में उपयोग किया जाता है (और प्रामाणिक स्वाद के लिए बिल्कुल आवश्यक भी है), लेकिन उत्तर भारत में इसका कुछ अलग महत्व भी है। दक्षिण भारतीय प्रवासियों के साथ करी पत्ते का चलन मलेशिया, दक्षिण अफ्रीका और रियूनियन द्वीप तक फैला हुआ है।

करी पत्ता का पेड़

करी पत्ता के फूल

करी पत्ता के फल

औषधीय गुण

एक शोध के अनुसार प्रति सौ ग्राम करी पत्ते में 66.3 प्रतिशत नमी, 6.1 प्रतिशत प्रोटीन, एक प्रतिशत बसा, 16 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 6.4 प्रतिशत फाइबर और 4.2 प्रतिशत खनिज पाया जाता है। इसमें कैल्शियम, फॉस्फोरस, आयरन और विटामिन 'सी' भी पाया जाता है। करी पत्ते का सेवन कई चिकित्सा स्थितियों और अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए फायदेमंद साबित हुआ है। इसके कई महत्वपूर्ण स्वास्थ्य लाभ होने के साथ-साथ यह भोजन को प्राकृतिक रूप से स्वादिष्ट बनाने का मसाला घटक है। करी पत्ते भोजन को सुखद और खुशबूदार बनाने के साथ-साथ इसको पौष्टिक और स्वादिष्ट भी बनाते हैं। इनमें विभिन्न ऑक्सीकरणरोधी (एंटीऑक्सीडेंट) गुण होते हैं और दस्त. जठरांत्र (गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल) की समस्याओं जैसे-अपच, अत्यधिक अम्लीय स्राव, पेप्टिक अल्सर, पेचिश, मधुमेह और एक अस्वास्थ्यकर कोलेस्ट्रॉल संतुलन को नियंत्रित करने की दक्षता रखते हैं। यह भी पाया गया है कि इसमें कैंसररोधी गुण विद्यमान होते हैं और यह यकृत या लीचर की रक्षा करने के लिए जाना जाता है। इच्छित उपयोग के आधार पर पत्तियों को सुखाया या तला जा सकता है। ताजा रूप भी खाना पकाने और हर्बल दवाओं दोनों के लिए बहुत लोकप्रिय है। आयुर्वेदिक चिकित्सा में भी करी पत्ते में कई औषधीय गुण पाए जाते हैं। ये एंटी-डायबीटिक, एंटीऑक्सीडेंट, रोगाणुरोधी (एंटीमाइक्रोबियल), एंटी इंफ्लेमेटरी, एंटी कार्सिनोजेनिक और हेपेटोप्रोटेक्टिव (लीवर को नुकसान से बचाने की क्षमता) गुणों से युक्त है। करी पत्ता की जड़ें शरीर के दर्द के इलाज के लिए उपयोग की जाती हैं और छाल का उपयोग सांप के काटने से उत्पन्न दर्द और विष के दुष्प्रभाव से राहत के लिए किया जाता है। इसके धुले हुए पत्तों को खाने से उल्टी बंद हो जाती है। इसके पोषण मूल्य से युवा और वृद्ध दोनों वर्गों को समान रूप से लाभहोता है, जो महिलाएं कैल्शियम की कमी. ऑस्टियोपोरोसिस आदि से पीड़ित हैं, वे करी पत्ते को एक आदर्श और प्राकृतिक रूप से कैल्शियम पूरक के रूप में पा सकती हैं। नींबू के रस और चीनी के साथ करी पत्ते का ताजा रस, अपच और वसा के अत्यधिक उपयोग के कारण सुबह के रोग, मिचली और उल्टी के उपचार में एक प्रभावी दवा भी है।

नीचे प्रस्तुत तालिका में करी पत्ते (**Murraya koenigii)** में विद्यमान प्रमुख पोषक तत्वों एवं उनके मात्रात्मक मानों का विवरण दिया गया है**:**

.सं.	पोषक तत्व	ताज़ी करी पत्ता का मूल्य (100 ग्राम में)	सूखे करी पत्ता का मूल्य (100 ग्राम में)
1	प्रोटीन	6 ग्राम	12 ग्राम
2	वसा (फैट)	1 ग्राम	6.4 ग्राम
3	कार्बोहाइड्रेट	18.7 ग्राम	64.31 ग्राम
4	कैल्शियम	830 मि.ग्रा.	2040 मि.ग्रा.
5	लोह (आयरन)	0.93 मि.ग्रा.	12 मि.ग्रा.
6	बीटा कैरोटीन	7560 माइक्रोग्राम	5292 माइक्रोग्राम

करी पत्ते को महीन पीस कर छाछ के साथ मिश्रित करके खाली पेट भी लिया जा सकता है, जो कि पेट में हो रहे उतार-चढ़ाव के मामले में लाभकारी परिणाम देता है। यह एक लैक्सेटिव के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

गर्मियों के दौरान त्वचा पर फोड़े-फुंसी दिखाई देते हैं। अधिकांश फोड़े समय के साथ कम हो जाते हैं. लेकिन कुछ बने रह सकते हैं और दर्दनाक हो सकते हैं। इस तरह की स्थितियों के इलाज में करी पत्ते काम आते हैं। जल्दी राहत के लिए करी पत्ते से बना पेस्ट लगाया जाता है। पुदीना और धनिया पत्ती के साथ करी पत्ता का उपयोग अत्यधिक पित्त के इलाज में किया जा सकता है। इसका उपयोग जलने, खरोंच और त्वचा के फटने के इलाज के लिए प्रभावी है। करी पत्ते के ताजा रस का उपयोग करके मोतियाबिंद के विकास को रोका जा सकता है। इसकी जड़ के रस के उपयोग से गुर्दे के दर्द को ठीक किया जा सकता है।

पोषक तत्व

करी पत्ते में पाए जाने वाले मुख्य पोषक तत्व कार्बोहाइड्रेट (सूक्ष्म मात्रा में), फाइबर, कैल्शियम, फॉस्फोरस, लोहा, मैग्नीशियम, तांबा और खनिज हैं। इसमें विभिन्न विटामिन जैसे निकोटिनिक एसिड, एंटीऑक्सीडेंट, अमीनो एसिड, ग्लाइकोसाइड और फ्लेवोनोइड भी शामिल हैं। इसके साथ ही इसमें वसा लगभग 0.1 ग्राम प्रति 100 ग्राम पाया जाता है। करी पत्ते में मौजूद अन्य रासायनिक घटक कार्बोजल एल्क्लॉइड हैं। बालों की उचित वृद्धि के लिए पोषक तत्वों के स्रोत के लिए यह एक उत्कृष्ट माध्यम है। करी पत्ते के नियमित सेवन से बाल मजबूत होते हैं, रूसी ठीक होती है और चालों का असमय सफेद होना रुक जाता है। इसमें विटामिन 'ए', विटामिन 'बी', विटामिन 'सी', विटामिन बी2, कैल्शियम और लौह प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि करी पत्ता में एलडीएल कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने की क्षमता होती है।

मृदा एवं जल संरक्षण में करी पत्ते का महत्व

करी पत्ते के पौधे का उपयोग मृदा एवं जल संरक्षण में भी बहुतायत से किया जा सकता है। पेड़ का आकार छोटा होने के कारण जैवीय बाड़े के रूप में किसानों द्वारा इसका उपयोग किया जा सकता है। वानस्पतिक अवरोध वो रूप में अनन्नास व नींबू घास के साथ प्रयोग करके मृदा अपरदन एवं मृदा क्षरण को रोका जा सकता है। इस प्रकार से करी पत्ता जनजातीय इलाकों में प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षण करने तथा आदिवासी किसानों के स्वास्थ्य एवं आजीविका के लिए किसी वरदान से कम नहीं है। करी पत्ते का मृदा एवं जल संरक्षण से संबंधित अनुसंधान बहुत सीमित है। इस प्रकार के औषधीय पौधों को प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में अधिक प्रयोग करने की जरूरत है।

निष्कर्ष

करी पत्ता एक बहुउपयोगी पौधा है, जो न केवल भारतीय रसोई का अभिन्न हिस्सा है, बल्कि इसके औषधीय गुण भी इसे अत्यंत मूल्यवान बनाते हैं। इसमें मौजूद बायोएक्टिव यौगिक जैसे टरपीनॉइड्स, एंटीऑक्सीडेंट्स, विटामिन्स, और खनिज तत्व अनेक रोगों की रोकथाम और उपचार में सहायक होते हैं। यह पौधा पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में लंबे समय से प्रयोग में लाया जा रहा है और अब वैज्ञानिक शोधों से भी इसके औषधीय गुणों की पुष्टि हो रही है। करी पत्ता पौष्टिकता, सुगंध, स्वाद और स्वास्थ्य लाभ का एक उत्तम स्रोत है, जिसे नियमित आहार का हिस्सा बनाकर बेहतर स्वास्थ्य की दिशा में कदम बढ़ाया जा सकता है। इसके व्यापक उपयोग की संभावनाएं खाद्य, औषधि और प्रसाधन उद्योगों में भी बढ़ रही हैं।

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-4, Issue-02
Article ID: 10429

आलू में रोग व कीट प्रबन्धन

डॉ0 मनोज कुमार सिंह एवं डॉ0 हेमलता पंत
असिस्टेंट प्रोफेसरए उद्यान विज्ञान विभाग एवं जन्तु विज्ञान विभाग
कुलभास्कर आश्रम पी0जी0 कॉलेज एवं सी0एम0पी0 पी0जी0 कॉलेज प्रयागराज

आलू में लगने वाले प्रमुख रोग एवं कीट निम्नलिखित हैं–

1. पिछेती झुलसा रोग– झुलसा रोग फफूँदी द्वारा लगता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण पौधे के निचली या मध्य पत्तियों पर पानी से भींगे भूरे धब्बे बन जाते हैं। धब्बों के किनारे सफेद फफूँदी जैसी वृद्धि आद्र मौसम में दिखाई देती है। पत्तियाँ तेजी से सड़कर काली हो जाती हैं। तनों पर भूरे धंसे हुए धब्बे तथा अंदर टिश्यू भूरे व सड़े दिखाई देते हैं। रोग बादल, ओस व ठंडे मौसम में बहुत तेजी से फैलता है। नियंत्रण हेतु किसान भाई खेत में जल निकास का उत्तम प्रबन्ध करें। रोग रोधी किस्में जैसे कुफरी बादशाह, कुफरी ज्योति आदि लगाए। खेत को खरपतवार मुक्त रखें। संक्रमित पौधे अवशेष नष्ट करें दे। मैन्कोजेब 0.25 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करें। यानि 0.25 प्रतिशत का घोल बनाने के लिए 2.5 ग्राम मैंकोजेब प्रति लीटर पानी में डालकर आवश्यकतानुसार घोल बनाकर छिड़काव करें।

2. अगेती झुलसा रोग– अगेती झुलसा का प्रकोप होने पर पत्तियों पर गोल भूरे धब्बे पड़ जाते हैं। पुरानी पत्तियों से शुरू होकर ऊपर की तरफ बढ़ता है। पौधा कमजोर होकर समय से पहले सूखने लगता है। अगेती झुलसा के नियंत्रण के लिए संतुलित खाद विशेषकर पोटाश का प्रयोग करें। मैंकोजेब 0.25 प्रतिशत घोल का छिड़काव 12–15 दिन के अन्तराल पर दो बार करें।

3. ब्लैक स्कर्फ– पौधे की निचली तनों पर हल्के भूरे/काले दाग बन जाता है। पौधा कमजोर, अंकुरण कमजोर तथा तना सड़ने लगता है। जड़ों की बढ़वार कम और फसल उत्पादन घट जाता है। रोग नियंत्रण हेतु स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का उपयोग करना चाहिए। कार्बोन्द्रिाजिम 2 से 2.5 ग्राम प्रति लीटर या ट्राइकोडर्मा 5–10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें। फसल चक्र अपनाएं। खेत को साफ–सुथरा रखें और रोग अवशेष को जला दें।

4. फ्यूजेरियल रॉट–यह रोग भंडारण का रोग है। भंडारण के समय कंद पर सिकुड़न व सूखी दरारें पड़ जाती हैं। अंदर का टिश्यू कठोर और सूखा हो जाता है। नियंत्रण हेतु अधिक नमी वाले भंडारण से बचें। कंद कटाई के बाद धूप में सुखा लें। बीज कंद पर थिरम या कार्बेन्डाजिम 2–3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर ही बुवाई करें।

5. मोजेक वाइरस– आलू में विषाणु रोग लगने से पत्तियों पर हल्के–गहरे हरे धब्बे बन जाते हैं। पत्तियाँ सिकुड़ने लगती है। झूर्रियाँ पड़ जाती है। उपज में भारी कमी आ जाती है। प्रबन्धन हेतु स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का उपयोग करें। रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला या नष्ट कर दें। सफेद मक्खी और एफिड के नियंत्रण के लिए नीम तेल 5 मिलीलीटर/लीटर की दर से छिड़काव करें। खरपतवार नियंत्रण करें।

6. स्कैब रोग– कंदो की सतह पर खुरदरें, कॉर्कनुमा धान बन जाते हैं। दानेदार उभार भी दिखाई देते हैं। कंद का आतंरिक भाग प्रभावित नहीं होता लेकिन बाजार भाव घट जाता है। उपचार हेतु आलू की खेती हल्की अम्लीय मिट्टी ?? 5.5?5 हो तो उपयुक्त होती है। गन्धक (सल्फर) 20–25 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें। फसल चक्र अपनाए। बीज उपचार मैन्कोजेब या सल्फरयुक्त फफूँदीनाशी से करके ही बुवाई करें।

आलू के रोग का समेकित प्रबन्धन :

- गहरी जुताई करें। जल निकास का उत्तम प्रबन्ध करें। 2–3 वर्ष का फसल चक्र अपनाएं।
- प्रमाणित बीज 30–40 ग्राम का उपयोग करें। बीज उपचार एरीटान या एगलाल से उपचारित करके ही बुवाई करें। अगर आलू को काट कर बोना चाहते हैं तो मध्यम व देर से प्रजातियों को काट कर बो सकते हैं प्रत्येक भाग में 2–3 आँखें हो और वजन 25 ग्राम से कम ना हो। अगेती किस्मों को बिना काटे ही बुवाई बीज–उपचार करके ही करें। अगेती किस्मों को कदापि काट कर न बोएं।
- संतुलित छच्ज्ञ का प्रयोग करें। पोटाश का अधिक उपयोग करें इससे उपज तथा रोग प्रतिरोध क्षमता बढ़ता है। जैविक खाद व ट्राइकोडर्मा का उपयोग करें।
- वाइरस को फैलाने वाले कीट एफिड, सफेद मक्खी व लीफ हापर के नियंत्रण के लिए नीम के तेल का प्रयोग करें।
- समय से मैंकोजेब का प्रयोग करें नियंत्रण न होने की दशा में 12–15 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें।

आलू में लगने वाले प्रमुख नेमाटोड : कारण व निवारण

1. आलू की फसल को निम्नलिखित नेमाटोड रोग फैलाते हैं–

रूट–नॉट नेमाटोड–मेलाइडोगाइन स्पी0 (विशेषकर–मेलाइडोगाइन इंकाग्नीटा और मे0 जावानिका।

सिस्ट नेमाटोड– ग्लोबोडेरा रोस्टोचाइनेन्सिस व ग्लो0 पालिडा

लीजन नेमाटोड– प्राटाइलेन्चस स्पीसिज।

2. नेमाटोड लगने के कारण–

आलू के संक्रमित बीज का उपयोग

हल्की व बलुई मृदा

एक ही खेत में बार–बार आलू की खेती

उचित जल का प्रबन्धन न होना

खरपतवार का प्रकोप

जैविक पदार्थों की कमी

3. नेमाटोड के प्रकोप के लक्षण–

पौधों पर लक्षण– पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। पौधों की बढ़वार रूक जाती है। पौधे बौने

रह जाते हैं। खेत की फसल असमान दिखाई देती है।

कंद एवं जड़ों पर लक्षण– जड़ों में गांठें बन जाती है। कंद छोटे, विकृत व कम संख्या में बनते हैं। कंदों की गुणवत्ता खराब हो जाती है। सिस्ट नेमाटोड में जड़ों पर छोटे भूरे या पीले सिस्ट दिखाई देते है।

नेमाटोड का प्रबन्धन :

1. परामपरागत विधियाँ–

फसल चक्र अपनायें–आलू के बाद गेहूँ, मक्का, ज्वार, बाजार जैसी गैर–पोषक फसलें लें।

सदैव स्वस्थ व प्रमाणित बीज का उपयोग करें।

ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई करें अर्थात मई–जून में गहरी जुताई से नेमाटोड नष्ट होते हैं।

खरपतवार मुक्त खेत को रखें।

2. जैविक नियंत्रण–

नीम की खली 200–250 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में मिलाएं।

हरी खाद जैसे सनई, ढैंचा, ग्वार की हरी खाद मिट्टी में मिलाएं।

जैव एजेंट का प्रयोग– ट्राइकोडर्मा विरिडी का 2.5–5 किग्रा/हेक्टेयर गोबर की खाद में मिलाकर डालें।

3. रासायनिक नियंत्रण– रासायनिक नियंत्रण अधिक प्रकोप की स्थिति से करें। कार्बोफ्यूरान 3जी– 1 किग्रा0 सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के पहले मृदा में मिला दें।

4. समेकित नेमाटोड प्रबन्धन–

- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें और साथ में फसल चक्र अपनाएं।
- नीम की खली और जैव–एजेंट का प्रयोग करें।
- हरी जुताई करें और संतुलित उर्वरक का प्रयोग करें।
- आवश्यकता पड़ने पर ही रसायन का प्रयोग करें।

आलू में लगने वाले प्रमुख कीट

- कटवर्म– कटुवा कीट रात के समय सक्रिय होता है। मिट्टी के सतह के पास से तनों को काट देता है। पौधे जड़ से कटकर गिर जाते हैं। नियंत्रण हेतु गहरी जुताई करें। खेत की मेंड़ो पर खरपतवार न रहने दें। शाम को लाइट ट्रैप लगाए। क्विनालकॉस कीटनाशी का प्रयोग करें।
- सफेद मक्खी– रस चूसकर पौधों की वृद्धि रोकती है। यह कीट वाइरस रोग भी फैलाता है। उड़ाने पर झुंड में उड़ती है। नियंत्रण हेतु पीले चिपचिपे ट्रैप लगाये। मेटासिस्टॉक्स 0.1 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें।
- तना और कंद छेदक– यह कीट खेत और भंडारण दोनों में भारी नुकसान पहुँचाता है। कंदों में छेद बना देता है। लार्वा अंडे से निकलकर कंदो और पत्तियों को खाते हैं। नियंत्रण हेतु स्वस्थ बीज का उपयोग करें। कंदों को मिट्टी से ढ़क कर बुवाई करें। आलू के कंद खुले न छोड़े। लीफ व फेरेमोन ट्रैप का उपयोग करें। भंडारण में कंदो को अच्छी हवा व साफ स्थान पर रखें। आवश्यकता

होने पर क्लोरोपाइरीफास 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें। ट्राइकोग्रामा कार्ड का उपयोग करें। संक्रमित पौधे के हिस्से नष्ट करें।

आलू की फसल में समेकित कीट प्रबन्धन :

- रोग कीट मुक्त बीज का उपयोग करें। सही दूरी पर रोपई करें। फसल चक्र अपनाएं।
- खरपतवार नियंत्रण करें। समय पर सिंचाई व खाद का प्रयोग करें। समय से मिट्टी चढ़ाए।
- फेरोमोन व लाइट ट्रैप का उपयोग करें। संक्रमित भाग को हटा दें।
- नीम आधारित उत्पाद का प्रयोग करें। ट्राइकोग्रामा कार्ड और जैव कीटनाशी का प्रयोग करें।
- कीट का पहचान करके और आर्थिक नुकसान स्तर के आधार पर ही प्रयोग करें। कीटनाशकों का रोटेशन करके उपयोग करें।

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-4, Issue-02
Article ID: 10430

सी-बकथॉर्न: पारंपरिक चिकित्सा से आधुनिक जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा सुधार

सृजना बिष्ट[1], शैलजा पुनेठा[1*] और विनीत कस्वां[*2]
1 जी.बी. पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखंड
2 कॉलेज ऑफ बेसिक साइंस एंड ह्यूमैनिटीज, सरदारकृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय, बनासकांठा, गुजरात

सी बकथॉर्न *की उत्पत्ति हेंगडुआन पर्वत और पूर्वी हिमालय क्षेत्र में हुई और यह पूरे यूरेशिया के शीतोष्ण क्षेत्रों में व्यापक रूप से वितरित है। यह मुख्यतः ठंडे और शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है, और उत्तराखंड हिमालय में इसकी उच्चतम उत्पादकता पाई जाती है, विशेष रूप से चमोली, उत्तरकाशी और पिथौरागढ़ जिलों में। यह भारत के अन्य हिस्सों में भी उगाया जाता है, जैसे हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, लद्दाख और सिक्किम, जहाँ इसे स्थानीय रूप से 'अमेश', 'अमील', 'त्सरमांग' और 'चुक' कहा जाता है। भारतीय हिमालयी क्षेत्र के पौधों में अत्यधिक अनुकूलन क्षमता होती है, जिससे ये विविध पर्यावरणीय परिस्थितियों में उग सकते हैं और -40°C से लेकर 40°C तक के तापमान और उच्च ऊँचाई पर भी जीवित रह सकते हैं। इसके अलावा, उत्तराखंड के हिमालयी क्षेत्र में मिट्टी क्षरण और भूस्खलन के अध्ययन से पता चला है कि जहाँ सी बकथॉर्न उगता है, वहां भारी बारिश के बावजूद नुकसान नहीं होता। इसलिए स्थानीय निवासी इसे भूस्खलन वाले क्षेत्रों में लगाते हैं ताकि मिट्टी का क्षरण रोका जा सके, सूक्ष्मजलवायु नियंत्रित हो और पारिस्थितिक स्थिरता बनी रहे। यह पौधा सूखी, क्षारीय और खारी मिट्टी में तथा बाढ़ के दौरान भी जीवित रह सकता है। इसके फल, पत्तियाँ, तने, जड़ें और कांटे सभी पारंपरिक रूप से औषधीय उपयोग, मिट्टी और जल संरक्षण, नाइट्रोजन स्थिरीकरण और वन्य जीव आवास स्थापित करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। इस प्रजाति की पत्तियों का उपयोग विशेष क्षेत्रों में चाय बनाने के लिए भी किया जाता है।*

पिछले तीन दशकों में, इस पौधे ने काफी ध्यान आकर्षित किया है और इसकी उच्च पोषण और औषधीय मूल्य के कारण इसकी मांग बढ़ गई है। इस मांग को पूरा करने के लिए इसके खेती को बढ़ाने के कई तरीके अपनाए जा रहे हैं, जिनमें टिशू कल्चर प्रजनन सबसे प्रमुख है, क्योंकि यह तेज़ वृद्धि और वांछित विशेषताओं को संरक्षित करने की सुविधा देता है, जिससे नई किस्मों का निर्माण होता है। आज, नेक्स्ट-जेनरेशन सीक्वेंसिंग के विकास के साथ, इस पौधे का जीनोमिक, ट्रांसक्रिप्टोमिक और प्रोटिओमिक स्तर पर अध्ययन करना सस्ता और संभव हो गया है, जिससे इसकी सतत उपयोगिता के माध्यम से जैव अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के नए अवसर खुल रहे हैं।

हालाँकि, स्थानीय लोगों में इसकी संभावनाओं के प्रति जागरूकता सीमित है, और इसके उपयोग में स्वाद संबंधी मूल्यांकन और प्रसंस्करण ज्ञान की कमी बाधक

है। इसके अलावा, जबकि इसके फाइटोकेमिकल और फार्माकोलॉजिकल गुणों पर वैश्विक स्तर पर कई अध्ययन हुए हैं, किन्हीं विशेष क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन का इसके प्रभाव पर कितना असर पड़ रहा है, इस पर जानकारी सीमित है।

पोषण संरचना

1.विटामिन और खनिज

सी बकथॉर्न के फल में विटामिन C की मात्रा बहुत अधिक होती है, जो इसे प्राकृतिक रूप से विटामिन का खजाना बनाती है। इसके फलों में विटामिन C लगभग 223–695 mg/100 g तक पाया जाता है, जो संतरा, आम और खुबानी जैसी आम फलों की तुलना में काफी अधिक है। इसके फलों को जूस में बदलने पर लगभग 75% विटामिन C बरकरार रहता है। इसके अलावा, इसमें विटामिन A, विटामिन E, नियासिन, विटामिन B2 और B6 भी पाए जाते हैं। यह फल पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस और आयरन जैसे आवश्यक खनिजों से भी भरपूर होता है, जिसमें पोटैशियम सबसे अधिक मात्रा में होता है।

2. कार्बनिक अम्ल

फलों में विभिन्न कार्बनिक अम्ल पाए जाते हैं, जो इसके स्वाद और खट्टापन को बढ़ाते हैं। मुख्य अम्ल में मालिक, एस्कॉर्बिक, साइट्रिक, सक्सिनिक और ऑक्सैलिक अम्ल शामिल हैं।

3.एमिनो एसिड्स

सी बकथॉर्न में 20 में से 18 एमिनो एसिड्स पाए जाते हैं। इनमें एस्पार्टिक एसिड मुख्य मुक्त एमिनो एसिड है, इसके बाद प्रोलिन और थ्रियोनिन आता है।

4.बायोएक्टिव यौगिक

- कैरोटीनॉइड्स: ये जलीय रंगद्रव्य हैं जो फलों को नारंगी-पीला रंग देते हैं। इसमें ज़ेक्सैंथिन, β-क्रिप्टोक्सैंथिन और β-कैरोटीन प्रमुख हैं, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी माने जाते हैं।
- पॉलीफेनॉल्स: यह फल पॉलीफेनॉल्स से भी भरपूर है, जो एंटीऑक्सिडेंट गुणों के लिए जाने जाते हैं। मुख्य पॉलीफेनॉल्स में फ़ेनोलिक एसिड और फ्लावोनॉइड्स शामिल हैं।
- फैटी एसिड्स: सी बकथॉर्न तेल में 19 फैटी एसिड पाए जाते हैं, जिनमें 8 संतृप्त और 11 असंतृप्त होते हैं। प्रमुख असंतृप्त फैटी एसिड्स हैं पामिटोलेइक, ओलिक और लिनोलिक एसिड।
- फाइटोस्टेरॉल्स: यह पौधों से प्राप्त स्टेरॉल्स हैं, जो हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हैं। इसमें β-साइटोस्टेरॉल प्रमुख है, और कुल फाइटोस्टेरॉल्स लगभग 20-30 g/kg ताजे वजन में पाए जाते हैं।
- परंपरागत चिकित्सा और स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली
- सी बकथॉर्न का पारंपरिक और जनजातीय चिकित्सा में लंबा इतिहास है। इसके फल, पत्तियाँ और बीज सूजन, घाव, अल्सर, उच्च रक्तचाप और हृदय संबंधी रोगों के इलाज में उपयोग किए जाते रहे हैं। इसकी फाइटोकेमिकल्स जैसे फ्लावोनॉइड्स, फ़ेनोलिक एसिड और आवश्यक फैटी एसिड इसके औषधीय गुणों का आधार हैं। अध्ययन बताते हैं कि सी बकथॉर्न के अर्क में एंटीऑक्सिडेंट, एंटी-इन्फ्लेमेटरी, एंटीप्लेटलेट और एंटीडायबिटिक गुण होते हैं, जो चयापचय

रोगों, हृदय स्वास्थ्य और त्वचा संबंधी समस्याओं में लाभकारी हैं।

स्वास्थ्य संवर्धक गतिविधियाँ

1. **एंटीऑक्सिडेंट**

   सी बकथॉर्न में कैरोटीनॉइड्स, फ्लावोनॉइड्स और ऑर्गेनिक एसिड्स पाए जाते हैं, जो इसे शक्तिशाली एंटीऑक्सिडेंट बनाते हैं। इसके फल और पत्तियाँ दोनों ही एंटीऑक्सिडेंट से भरपूर हैं और रक्त में ऑक्सीडेटिव तनाव कम करने में मदद करते हैं।

2. **एंटी-इन्फ्लेमेटरी**

   इसके फल और तेल में असंतृप्त फैटी एसिड, विटामिन E, K, कैरोटीनॉइड्स और फाइटोस्टेरॉल्स पाए जाते हैं, जो सूजन कम करने में मदद करते हैं। इसके फ्लावोनॉइड्स और एसिड्स सेल सुरक्षा और पुनर्जनन को बढ़ावा देते हैं।

3. **एंटीबैक्टीरियल और एंटीवायरल**

   सी बकथॉर्न कई हानिकारक बैक्टीरिया जैसे Staphylococcus aureus, Salmonella और *E. coli* को दबा सकता है। इसके तेल और अर्क में एंटीबैक्टीरियल और कुछ एंटीवायरल गुण भी पाए जाते हैं, जो ह्यूमन वायरस और डेंगू जैसी बीमारियों में उपयोगी हो सकते हैं।

4. **कैंसर विरोधी प्रभाव**

   इसमें प्रोटियॉनिडिन्स, कुरकुमिन, रेस्वेराट्रोल और फ्लावोनॉइड्स जैसे फाइटोकेमिकल्स होते हैं, जो ट्यूमर वृद्धि को रोकने, apoptosis को बढ़ावा देने और रासायनिक थेरेपी के दुष्प्रभाव कम करने में मदद करते हैं।

5. **हृदय स्वास्थ्य**

   सी बकथॉर्न प्रोकैसिडिन्स रक्त वाहिकाओं की रक्षा करते हैं, प्लेटलेट सक्रियता कम करते हैं और कोलेस्ट्रॉल स्तर सुधारते हैं। यह हृदय और धमनियों के लिए लाभकारी है।

6. **तंत्रिका और त्वचा स्वास्थ्य**

   इसके बायोएक्टिव यौगिक तंत्रिका तंत्र को सुरक्षित रखते हैं और अल्ज़ाइमर रोग में लाभकारी हैं। इसका तेल त्वचा के घाव भरने, जलने और त्वचा पुनर्जनन में उपयोगी है। इसमें पामिटोलेइक एसिड, ओमेगा फैटी एसिड, एंटीऑक्सिडेंट, विटामिन E और K, कैरोटीनॉइड्स और फाइटोस्टेरॉल्स मौजूद हैं।

सी-बकथॉर्न में जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा सुधार

सी-बकथॉर्न एक बहुमूल्य औषधीय एवं पोषणीय पौधा है, जिसमें विटामिन-C, एंटीऑक्सीडेंट और फैटी एसिड प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। जैव-प्रौद्योगिकी के माध्यम से इसके सुधार की व्यापक संभावनाएँ हैं। टिश्यू कल्चर तकनीक द्वारा रोग-मुक्त, उच्च उपज और एकसमान पौध सामग्री का त्वरित उत्पादन संभव है। मार्कर-सहायता प्रजनन से अधिक फलधारण, कम काँटेदार तथा उच्च जैव-सक्रिय यौगिकों वाली किस्में विकसित की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त, जीन अभिव्यक्ति अध्ययन से तनाव-सहिष्णु (ठंड, सूखा) किस्मों का विकास संभव है, जिससे पर्वतीय क्षेत्रों में सी-बकथॉर्न की उत्पादकता और आर्थिक उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है।

निष्कर्ष

सी-बकथॉर्न भारतीय हिमालयी क्षेत्र की एक बहुउपयोगी एवं रणनीतिक पौध प्रजाति है, जो पारंपरिक चिकित्सा, पोषण सुरक्षा, पारिस्थितिक स्थिरता और आधुनिक जैव-प्रौद्योगिकी के बीच सेतु का कार्य करती है। इसके

उच्च पोषण मूल्य, विविध बायोएक्टिव यौगिक और औषधीय गुण इसे स्वास्थ्य, खाद्य, कॉस्मेटिक और फार्मास्यूटिकल उद्योगों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण बनाते हैं। साथ ही, मिट्टी संरक्षण, जलवायु सहनशीलता और आजीविका सृजन में इसकी भूमिका उल्लेखनीय है। वैज्ञानिक नवाचार, स्थानीय ज्ञान, प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन के समन्वय से सी-बकथॉर्न हिमालयी समुदायों के सतत विकास और जैव-अर्थव्यवस्था को सशक्त आधार प्रदान कर सकता है।

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-4, Issue-02
Article ID: 10431

Success Sotry: From Marginal Farmer to Dairy Entrepreneur- A Model from District Sirmour

Harshita Sood, Shiwali Dhiman* and Pankaj Mittal
Krishi Vigyan Kendra Sirmour at Dhaulakuan, CSK Himachal Pradesh Krishi Vishvavidyala, Palampur

Mr Taran Singh a resident of Village Akalgarh, P.O. Shivpur, Tehsil Paonta Sahib, District Sirmaur (Himachal Pradesh) is a progressive dairy farmer. Although he is educated only up to u5th standard only but has vast farming experience of about 30 years. He owns a marginal land holding of about 1.1hectares. At present he maintains a herd of forty milch animals, comprising thirty-two Holstein Friesian (HF) cows, two Jersey cows and six buffaloes, producing nearly 250 litres of milk per day. Earlier, this marginal farmer followed a traditional cereal-based cropping system with paddy, wheat, maize as the major cropping sequence. Being semi-literate, agriculture was his sole source of livelihood; however, due to limited land and dependence on conventional crops, farming remained non-remunerative. He faced considerable financial hardship in meeting his family's basic needs. Recognizing the limitations of traditional farming, he made a bold decision to shift towards dairy farming beginning his journey with just three animals. Through dedication, hard work and perseverance, he gradually transformed his small initiative into a successful and sustainable dairy enterprise

KVK Interventions:

Krishi Vigyan Kendra (KVK), Sirmaur played a pivotal role in transforming Mr. Taran Singh's dairy enterprise through continuous training, technical guidance and motivation. The KVK introduced him to the latest package of practices for scientific livestock management, which significantly improved herd health and productivity. Recognizing the need for quality feed, he was advised to shift a major portion of his limited landholding from traditional cereal crops to fodder cultivation to ensure a year-round supply of nutritious green fodder.

To further enhance fodder availability and sustainability, he was encouraged to adopt

improved and high-yielding varieties under the Maize–Berseem cropping sequence. In addition, KVK provided hands-on training in milk processing and value addition technologies, enabling him to diversify his income through processed dairy products. For maintaining better animal health and

increasing milk yield, he was also guided to regularly use the area-specific mineral mixture developed by CSKHPKV, Palampur.

Outcome:

Mr. Taran Singh's dairy enterprise has evolved into a highly profitable and sustainable livelihood model. His average daily milk production ranges from 300 to 400 litres, generating a gross daily income of approximately Rs. 10,000–15,000. In addition, the sale of surplus animals contributes an annual income of Rs. 2–3 lakh, substantially strengthening his overall farm income.Value addition has further enhanced profitability, with milk being processed into curd, khoya, ghee, paneer and khoya burfi, enabling him to offer a complete range of dairy products to consumers. Direct marketing of milk and milk products in the Paonta Sahib market has eliminated intermediaries, ensuring better price realization. The enterprise has also generated family employment, with his sons actively involved in marketing and business management.

His contributions and achievements have received due recognition. He was conferred the Progressive Farmer Award by Himotkarsha (NGO) in 2008. His success story, "Small-scale Dairy Farming: An Option for Improving the Livelihoods of Farmers in the Western Himalayan Region," was published in Vignettes of Farming Excellence by the Zonal Project Directorate (ZPD), Zone-I, PAU, Ludhiana in 2017. He was further honored by ICAR-IVRI during the North Zone Agricultural Fair held at Varanasi from 23–25 February, 2018.

Impact

Mr. Taran Singh's success has created a strong demonstration and multiplier effect in the region. His adoption of scientific dairy management, improved fodder production and value-addition practices has motivated many farmers in District Sirmaur to adopt commercial dairy farming. As a result, district-level milk production has increased by 26.56 per cent over the last five years, reaching 99.517 thousand tonnes in 2016–17. The model has effectively demonstrated that small-scale dairy farming, when supported with scientific interventions and market linkages, can significantly enhance income, employment and livelihood security for small and marginal farmers in the Western Himalayan region.

Enterprise	Gross Income (annual in Lakh Rs)	Net income (Lakh Rs)	Cost-Benefit ratio	Economic Impact of technology/intervention (cost saving/ higher yield/etc.)
Dairy	36.50	15.00	1.70	Cost saving and higher yield

Cereals	0.43	0.18	1.72	--

Conclusion: Mr. Taran Singh's journey reflects how scientific dairy farming, supported by KVK Sirmaur, can transform the livelihood of small and marginal farmers. Adoption of improved fodder practices, better livestock management and milk value addition significantly enhanced his income and created local employment. His success has motivated other farmers in District Sirmaur and contributed to strengthening the dairy sector in the Western Himalayan region.

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-4, Issue-02
Article ID: 10432

कीवी की सफल बागवानी

रवि केमवाल
बागी मथ्यान गाँव, चंबा, जिला- टिहरी गढ़वाल

उत्तराखंड में पलायन *एक बड़ी समस्या है जिसके पीछे रोजगार की कमी सबसे बड़ा कारण है। इस समस्या से निपटने के लिए कृषि एवं बागवानी एक प्रभावी तरीका हो सकता है, जो यहां के निवासियों को आत्मनिर्भर बनाकर रोजगार दे सकता है और यहां की समृद्धि कृषि विरासत को बचा सकता है। लेकिन अभी यहाँ पारंपरिक खेती का ही चलन है। जिस कारण यहाँ का युवा कृषि को रोजगार का साधन नहीं बना पाता, बहुत सारी समस्याएं हैं लेकिन कठिन परिश्रम और सही दिशा में प्रयास से इन चुनौतियों का सामना किया जा सकता है, इसके लिए युवाओं को आगे आना होगा ऐसी बागवानी और कृषि फसलें उगानी होंगी जिसमें जंगली पशु कम नुकसान पहुँचाते हो या फिर इससे बचने के उपाय खोजने होंगे।*

युवाओं की इस भागीदारी में श्री रवि केमवाल जी का काम विशेष स्थान रखता है। यह उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि कैसे कठिन परिश्रम और धैर्य से उत्तराखंड में कृषि एवं बागवानी को बढ़ावा दिया जा सकता है और पलायन की समस्या का समाधान किया जा सकता है। उनके द्वारा स्थापित यह मॉडल एक प्रेरणादायक उदाहरण है जो उत्तराखंड के निवासियों को आत्मनिर्भर बनाने और रोजगार के अवसर प्रदान करने में मदद कर सकता है।

श्री रवि केमवाल सॉफ्टवेयर इंजीनियर हैं,उन्होंने कुरूक्षेत्र यूनिवर्सिटी हरियाणा से B.C.A किया और IT से M. B. A किया है उसके बाद उन्होंने दो साल बेंगलौर में नौकरी करी और जब उन्हें चंडीगढ़ IT पार्क में जॉब करते हुए 7 साल हो गए थे उन्होंने नौकरी छोड़ दी उस वक्त वह मेनेजर के पद पर पहुँच गए थे। पर उन्हें शहरी भागदौड़ भरा जीवन रास नहीं आई बचपन में उनके दादाजी को गाँव में बंजर पड़ी जमीन की पीड़ा होती थी तो रवि के मन में भी इसे आबाद करने की बचपन से तमन्ना थी। नौकरी छोड़ने के बाद उन्होंने गाँव में कुछ करने का सोचा और इसके लिए काफी घूमे कि गाँव के लिए कुछ बेहतर चीज हो पाए वो यूट्यूब आदि में देखने लगे कि क्या किया जा सकता है। तो उन्हें दो ऐसी फसलें मिली जो जंगली जानवर नुकसान नही पहुँचाते थे तो वह ओर्गेनो, और रोजमेरी की खेती करने अपने गाँव चले आये।

उनके पास जो खेत थे वह लम्बे समय से बंजर और बिखरे हुए थे। उस पे काफी झाड़ियाँ, जंगली पेड़ उग गए थे, पहले इन खेतो को कृषि योग्य बनाया फिर रोजमेरी और ओर्गेनो के पौधे लगाए उन्होंने एक हर्बल कंपनी से संपर्क करा हुआ था। जिसने निशुल्क पौधे उपलब्ध कराये इनकी साल में चार बार फसल ली और तीन चार महीने में 18-20 हजार की कमाई हुई यह घास की तरह होती जंगली जानवर भी नहीं खाते लेकिन आगे इनकी मार्केटिंग में दिक्कते हुई यह आगे सफल नहीं हो पाया। गाँव में उनके दादाजी के समय की छानी थी जो गाँव से दूर काफी ऊपर थी उसके आस पास काफी खेत थे उन्होंने देहरादून से अखरोट, अनार, खुमानी आदि के

300 पौधे लगाए परंतु ये प्रयास असफल रहा चूंकि खेत गाँव से काफी दूर थे बिखरे पढ़े थे बाल्टी भर- भर के सिंचाई करनी पड़ती थी। तो उन्हें उचित समय में उचित देखभाल नही मिल पायी।

इसके बाद उन्होंने सोलन से कीवी मंगवाई वहा हर साल मेला लगता हैं। जनवरी माह में वहाँ पौधे बुक होते हैं, छानी वाले खेतों में बारिश की वजह से काफी मलबा और बड़े बड़े पत्थर आये हुए थे इसकी सफ़ाई करी फिर 35 पौधे कीवी के लगाए पर संकट बहुत सारे थे यहाँ बकरियाँ भी आती थी क्योंकि यह गाँव से उपर था तो देखभाल में दिक्कत होती थी। एक दिन एक बूढे बकरी वाले ने कहा कि यहाँ कुछ नहीं होगा क्योंकि यहाँ देखभाल करना मुश्किल है बकरियों और जंगली जानवरों का खतरा भी है यह बाद सुनके रवि को गुस्सा आया क्योंकि उन्होंने बहुत मेहनत से काम किया था लेकिन वह बताते हैं कि उस बूढे बकरी वाले की वजह से ही उन्हें बेहतर करने की प्रेरणा मिली क्योंकि इस घटना के बाद ही उन्हें उनके कृषक जीवन में अहम मोड़ आते हैं।

उस बूढे बकरी वाले और रवि के बीच काफी वाद विवाद हुआ बकरी वाला जो दिक्कतें गिनाता वे उसका तुरंत समाधान बता देते लेकिन वाद में उन्होंने सोचा कि बोल तो दिया पर होगा कैसे पर उन्होंने सोचा कि बोला है तो कर के भी दिखाएंगे। वहाँ पे बाउंड्री नही थी लाईट की सुविधा भी नहीं थी। उन्होंने यहाँ एक छोटा कमरा बनाने के लिए एक मिस्त्री से संपर्क करा उसने टिन से एक कमरा बना दिया किस्मत से छानी के आस पास बिजली का पोल भी लग रहा था। उन्होंने कनेक्शन लेके खेतों में फ्लड लाईट लगवा ली रात को घर जाते समय वे खेतों में लाइट जला लेते थे। उन्होंने लंगूर आदि जानवरों से सुरक्षा के लिए एक कुत्ता भी रखा फिर लॉक डाउन लग गया तो चंडीगढ़ से घर वाले भी गाँव आये घर वालों ने कहा की यही पे अच्छा मकान बना लेते हैं पर रवि का मन छानी वाली जगह बनाने का था क्योंकि गाँव वाले ताने बहुत मारते थे कहते थे कि "यहाँ कुछ नहीं है पड़ा लिखा है वापिस चला जा" काफी समझाने के बाद गाँव वाले उपर घर बनाने को माने।

यह बहुत विशेष बात है कि रवि का जन्म उत्तराखंड में नहीं हुआ वे चंडीगढ़ में ही पले बड़े हैं लेकिन उनका पहाड़ों से प्यार बेमिशाल है| वहां पे नेटवर्क भी नहीं आते है। नेटवर्क में जाने के लिए और उपर पहाड़ चड़ना पड़ता है। उन्होंने 2020 में कीवी लगाई यहाँ की समुद्र तल से ऊँचाई है 1500 मीटर उन्होंने एलिसन नामक किस्म लगाई है इसमें 7 अनुपात 1 में पौधे लगते हैं फिर 2021 की उद्यान विभाग से एक आदमी आया उसने बताया की ये पौधे आपने गलत लगा दिया हैं क्योंकि उन्हें ट्रेनिंग प्रुनिंग जैसी तकनीक नही पता थी। और उन्होंने लोहे एंगल भी नहीं लगाए थे बस लकड़ियाँ का सहारा दिया था ऊपर तार लगाए थे तीन साल बाद कीवी छोटा निकला क्योंकि पहले उन्हें तकनीकी जानकारी कम थी, उन्होंने देहरादून जाके 8-9 डब्बे लिए हर डब्बे में 1.5kg कीवी आई और 6-7 हजार की कमाई हुई जबकि 10000 का खर्च पौधे लगाने में आया था।

बरसात में खर पतवार काफी उग आये तो उन्होंने केमिकल डाल दिया जिसमें कीवी के 5 पौधे नष्ट हो गए इस घटना के बाद उन्होंने कभी केमिकल इस्तेमाल नही करा पूर्ण रूप से जैविक खेती करने लगे। 3 साल पहले आड़ू का बगीचा भी बनाया जिसमें 15 पौधे लगाए और पल्म, अखरोट के क्रमश:10, 6 पौधे लगाए और अमरूद और निम्बू के पौधे भी लगाए। चौथे साल उन्होंने एंगल लगाए जिसमें एक लाख रुपये का खर्च आया ट्रेनिंग आदि यूट्यूब से सीखी अप्रेल माह में फूल आते हैं लेकिन चौथे साल में ओले पड़े तो सारी फसल नष्ट हो गयी इस साल 10-15q कीवी की फसल हुई इसमें से 10q बिक चुकी है और 5q अभी बची है।

एलिसन किस्म की हार्वेस्टिंग लम्बी चलती है अभी वह 300 रूपये प्रति किलो की दर से कीवी बेच रहे हैं उनकी अधिकांश कीवी चंडीगढ़ के संपर्को में बिक जाती हैं जो ज्यादा मात्रा में कीवी लेते हैं उनको दाम कम लगता है। इस वर्ष उन्हें कीवी से लगभग 2 लाख से ज्यादा का मुनाफा हुआ है, वह महीनों में अलग अलग फसलें लेते है जैसे पूस जून में आड़ू, जो जुलाई तक चलता है फिर अखरोट , फिर निम्बू फिर कीवी वह अभी तक हार्वेस्ट कर रहे हैं| वह हल्दी, अदरक, प्याज, गोभी, बीन्स, राजमा, दाल, भी उगाते दालें सब्जियां उन्हें बाजार से नहीं लानी पड़ती हैं, खाद के लिए गोबर खरीदते हैं और उन्होंने ने कृषि बागवानी की सारी जानकारिया इंटरनेट से ली शहर में पले बड़े होने के कारण शुरुआत में उन्हें काफी दिक्कतें हुई वहाँ की शब्दावली भी उन्हें कम समझ आती थी। वह सारा काम खुद अकेले करते हैं उनके माता पिता चंडीगढ़ में रहते है वह गाँव से दूर छानी वाली जगह में अकेले रहते है |बागवानी में काफी मेहनत लग जाती है फूलों की छटाई करने में पूरा एक दिन एक पेड़ में लग जाता है| यहाँ लेबर की भी काफी कमी है, सारा काम खुद ही करना पड़ता है|अभी एक पहाड़ कटवाके उन्होंने 3-4 खेत बनाये हैं, वहाँ पर धूप कम आती है, यहाँ पे भी वह अनुकूल पौधे लगाए जायेंगे

आय- कीवी की फसल से इस साल 2.5 लाख की आय हुई 3q अदरक हुआ जो 15000 में बिका, लहसुन से, 15000, प्याज व आलू से 10000, बीन्स साल में दो बार होती है, जिससे 24000 आड़ू, प्लम अखरोट से 75000 की आय प्राप्त हुई उन्होंने गाँव में अपनी पूरी पूंजी का निवेश किया है, इस वर्ष से आमदनी होनी शुरू हो गयी है, भविष्य में अधिक मुनाफा होगा क्योंकि बगीचे अच्छी पैदावार देंगे| रवि जी का मानना है कि हम मानसिकता बदल कर पहाड़ी कृषि में सफल हो सकते हैं|

भविष्य की योजनाएं- भविष्य की योजना के बारे में पूछने पर रवि जी कहते हैं, कि उनका यही सपना था कि गाँव में सुकून से रहूँ, दादाजी का सपना पूरा हुआ और दिल में ये तमन्ना थी कि रिटायरमेंट लाइफ जियूँ क्योंकि बुढापे में तो ये सब संभव नही होता क्योंकि फिर हाथ पाँव काम नहीं करते इसलिए अभी सही है|आगे वह अब आवकाडो की खेती करने वाले हैं बीज मंगवा रखे है , कीवी की पौध भी तैयार करेंगे|

मुख्य समस्याएं- रवि जी बताते हैं कि यहाँ की पहले सिंचाई की दिक्कत थी तो उन्होंने टंकी बना ली है, और लंगूरों के लिए कुत्ते रख लिए है खुद भी देखभाल करते है ज्यादतर घर में ही रहते हैं, वर्तमान में मार्केटिंग सबसे बड़ी समस्या है, उनको चम्बा मंडी में उचित मूल्य नही मिलता है, देहरादून ले जाने में खर्चा अधिक आ जाता है, वो चाहते है की व्यापारी बगीचे में आके पूरा माल ले जाए इसके काफी फायदा होगा और लेबर न मिलना भी यहाँ की मुख्य समस्या है|

“द पहाड़ीएग्रीकल्चर”

ई-पत्रिका

‘पर्वतीय कृषि की ऑनलाइनमासिकपत्रिका’

संपर्कसूत्र:

pahadiagriculture@gmail.com

https://pahadiagromagazine.in

www.pahadiagromagazine.in